आचार्य श्री तुलसी धवल समारोह के अभिनन्दन में

अणुव्रत की ओर

प्रथम भाग



भूमिका
मुनि श्री नगराजजी

सम्पादक
मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम'

प्रबन्ध सम्पादक
श्री सोहनलाल बाफणा
उपमंत्री, अणुव्रत समिति, दिल्ली

१९६१

आत्माराम एण्ड संस
दिल्ली ० जयपुर ० जालन्धर ० मेरठ

ANUVRAT KI OR

by

Muni Shri Mahendrakumarji 'Pratham'

(श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कलकत्ता के सौजन्य से प्राप्त)

प्रकाशक

रामलाल पुरी, संचालक

आत्माराम एण्ड संस

काश्मीरी गेट, दिल्ली

माई हीराँ गेट, जालंधर

चौड़ा रास्ता, जयपुर

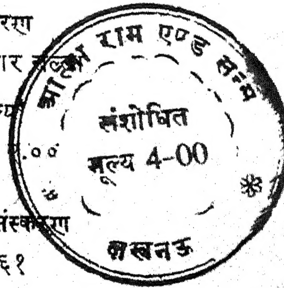
बेगमपुल रोड, मेरठ

आवरण

योगेन्द्रकुमार

मूल्य

रुपए .००



प्रथम संस्करण

१९६१

मुद्रक

दी सैण्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस

दिल्ली-६

भूमिका

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् श्री महावीर ने भारतवर्ष के पूर्वी अंचल से पांच अणुव्रतों का सन्देश दिया था। गौतम बुद्ध ने लगभग उसी युग में और उसी अंचल से पंचशील का सन्देश दिया था। वे सन्देश पूर्व से चलकर भारतवर्ष की पश्चिमी सीमाओं से ही नहीं टकराए अपितु, कालान्तर से वे समुद्रों पार भी पहुँच गए। अणुव्रत-आन्दोलन का घोष भारतवर्ष के पश्चिमी अंचल राजस्थान में महर्षि मूर्धन्य आचार्य श्री तुलसी के मुख से उठा और देश की सुविस्तृत सीमाओं तक पहुँचा। पूर्व के लोगों ने माना महावीर और बुद्ध का वही सन्देश पश्चिम से प्रतिध्वनित होकर पुनः हमारे कानों में पड़ा है तो उत्तर और दक्षिण के लोगों ने माना भारतवर्ष ऐसे पुरुषों को सदा से ही पैदा करता रहा है, जो डिगती हुई समाज की धूरी को धारण करके रखते हैं।

आन्दोलन के साथ सबका अपनत्व जुड़ा। उसकी चर्चा झोंपड़ियों में चली और लोकसभा तथा विधान सभाओं में चली। उसे जनता का सहयोग मिला और जननेताओं का भी। देश के ग्रामीण इस ओर सक्रिय हुए तो देश के विचारक और साहित्यकार भी। आन्दोलन की अन्तिम परीक्षा बुद्धिजीवी लोगों में हुई और वह वहां खरा उतरा। 'अणुव्रत की ओर' आन्दोलन का बाह्य प्रतिबिम्ब नहीं, वह उसके अन्तर का प्रतिबिम्ब है। वह ऐसे लेखकों की लेखिनी से आविर्भूत हुआ है, जिनकी पैनी दृष्टि स्थूल को भेदकर अन्तर को ग्रहण करने में समर्थ है।

अणुव्रत-आन्दोलन एक विचार-क्रान्ति है। वह प्रत्येक निर्माण का प्राग्बिम्ब विचारों में देखता है। विगत १२ वर्षों में अणुव्रत-आन्दोलन ने देश में क्या किया, वह किसी भौतिक कलेवर के रूप में नहीं देखा जा सकता, और न वह तोल-माप संख्या का विषय ही बन सकता है। वह अमूर्त निर्माण है, जो कोटि-कोटि लोगों के मन से प्रसूत हुआ है। वह विचार-निर्माण कार्यरूप में

परिणत होता भी दृष्टिगोचर हो रहा है। नैतिकता शब्द प्रशासन में आ रहा है, शिक्षण केन्द्रों में आ रहा है, योजना आयोग में आ रहा है तथा वह घरों और बाजारों और रचनात्मक संस्थाओं में आ रहा है। नैतिकता शब्द को आगे लाने में अणुव्रत-आन्दोलन देश में अपना निरुपम स्थान रखता है। ऐसे अभियान की देश में अनिवार्य अपेक्षा थी, जो केवल नैतिक अभ्युदय को ही अपना ध्येय बनाकर आगे बढ़े। अणुव्रत-आन्दोलन ने इस अपेक्षा को पर्याप्त रूप से पूरा किया है।

मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' ने प्रकीर्ण विचार मुक्ताओं को एक सूत्र में पिरोकर एक बहुमूल्य हार बना दिया है। विचार एक स्थायी सम्पत्ति होते हैं। उन्हें संजोकर किसी सुरक्षित मंजूषा में रख दिया जाता है तो वे युग-युग के लिए प्रेरणा द्वीप हो जाते हैं। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने अणुव्रत-आन्दोलन के प्रचार-प्रसार में बहुत सारे मौलिक कार्य किये हैं। साहित्य के क्षेत्र में भी आन्दोलन को मान्यता दिलाने में उनकी सूझ-बूझ और उनका श्रम अपूर्व है। एक युग था, जब साहित्यकारों को आन्दोलन में साम्प्रदायिक गन्ध आती थी, तेज और प्रभाव नहीं लगता था। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने भ्रान्ति की इस दुर्भेद्य दीवार को हटाने के लिए साहित्यकारों, पत्रकारों तथा अन्य विचारकों से व्यक्तिशः सम्पर्क साधा। अनेकशः सुविस्तृत चर्चाएं कीं। उनकी आशंकाओं का बुद्धिगम्य समाधान दिया और उन्हें आन्दोलन के प्रति प्रभावित किया। दिल्ली, जयपुर, बम्बई, लखनऊ और कलकत्ता उनके कार्यक्षेत्र रहे। अपने कार्य में उन्होंने धूप, छाया और दूरी की जरा भी परवाह न की। दरवाजे से दरवाजे पर घूमकर जन-सम्पर्क का जो उन्होंने मार्ग अपनाया, वह सर्वथा नवीन और उनके आत्म-साहस का परिचायक था। आदर और तिरस्कार को सम रूप से समझ सकने वाला व्यक्ति इसमें सफल हो सकता है। उनकी योग्यता, धैर्य तथा कार्य-निष्ठा को देखकर अनेकों लोग मुग्ध होते थे। एक बार वे घूमते-फिरते सुप्रसिद्ध विचारक और साहित्यकार श्री जैनेन्द्रकुमारजी के घर पहुँचे। जैनेन्द्रकुमारजी ने पूछा—आज आप कितने साहित्यकारों से अब तक सम्पर्क कर चुके हैं। मुनि महेन्द्रकुमारजी ने स्मित भाव से उत्तर दिया—आपका नम्बर सातवां है।

जैनेन्द्रकुमारजी ने कहा—आपकी कार्यक्षमता के प्रति मेरे मन में ईर्ष्या होती है। काश भी ऐसा कर्मण्य होता। ऐसे ही एक प्रसंग पर काका कालेलकर ने कहा—आप मेरे घर पर आए, इससे जैन साधुओं के प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी। मेरा अब तक का अनुभव यही था कि जैन साधु सबको अपने यहां ही बुलाकर खुश होते हैं। अस्तु, उनके व्यक्तिशः सम्पर्क के कटु और मधुर संस्मरणों का एक लम्बा ब्यौरा है और किसी दिन वह अणुव्रत इतिहास का एक प्रेरणाप्रद अध्याय बनेगा। तदनन्तर मुनि मोहनलालजी 'शार्दूल' आदि और भी अनेकों मुनियों ने इस क्षेत्र में कार्य किया और कर रहे हैं। इस कार्य-शैली का परिणाम हुआ कि अणुव्रत-आन्दोलन बहुत शीघ्र ही देश के बुद्धिजीवी लोगों की लेखिनी और वाणी का विषय बना।

पिछले वर्षों मुनि महेन्द्रकुमारजी 'प्रथम' हस्तलिखित 'जय ज्योति' पत्रिका का कलात्मक ढंग से सम्पादन करते रहे हैं। उन्होंने दो अणुव्रत विशेषांक भी निकाले। 'अणुव्रत की ओर' में अधिकांश लेख वे ही हैं, जो उक्त विशेषांकों से लिए गए हैं तथा कुछ अन्य भी। कुल मिलाकर ३३ निबन्धों का यह संकलन अणुव्रत साहित्य में श्रीवर्धक और जन-मानस के लिए एक नैतिक पाथेय होगा, ऐसी आशा है।

२८ जून '६१ }
दिल्ली }

—मुनि नगराज

सम्पादकीय

साहित्य मनुष्य की निरुपम सम्पत्ति है। साहित्य ही भूत को वर्तमान से और वर्तमान को भविष्य से जोड़ता है। सहस्रों वर्ष पूर्व मनुष्य ने जो सोचा, आज के मनुष्य को विरासत के रूप में मिलता है और आज मनुष्य जो सोचता है, वह साहित्य के माध्यम से आने वाली पीढ़ी की विरासत बनता है। एक युग वह भी था, जब मनुष्य लिखने का आदी नहीं था। तब मुखस्थ परम्परा से ही अपना ज्ञान अगली पीढ़ी को देता था। साहित्य की यह धारा नाना रूपों में हर एक युग में बहती ही रही है और मनुष्य इससे उपकृत होता ही रहा है।

अणुव्रत-आन्दोलन एक नैतिक-प्रवाह है। रक्त का संचार जैसे हर एक धमनि में आवश्यक होता है, नैतिकता का संचार भी जीवन के हर व्यवसाय और युग के हर चरण में अपेक्षित है। साहित्य ही उस नैतिक विद्युत् का वाहक तत्त्व है। 'अणुव्रत की ओर' से लोगों को नैतिक प्रेरणाएं ही नहीं मिलेंगी, वह एक युग की स्थिति का ब्यौरा भी युग-युग में देता रहेगा। चिन्तन और मनन की दृष्टि से भी उससे पाठकों को बहुत सामाग्री उपलब्ध होगी।

अणुव्रत साहित्य अब तक पर्याप्त समृद्ध हो चुका है। अनेकों विवेचनात्मक पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं, पर यह संकलन अपने प्रकार का है। एक ही कृति में देश के अनेकानेक विचारकों के विचार इसकी अपनी विशेषता है। अणुव्रतों पर अब तक लेख रूप में जितना लिखा गया है, वह समग्र इस संकलन में नहीं आ सका है। विद्वान् मुनिजनों ने लेख रूप में जितना लिखा है, उसका स्वतन्त्र संकलन कई खण्डों में आने योग्य है। इतर विद्वानों ने जो अब तक लिखा है उसमें से भी प्रस्तुत संकलन में चुने हुए लेख ही लिए जा सके हैं। कुछ एक वक्ताओं के भाषणों को भी संगृहीत कर लेखों का रूप दे दिया गया है, ताकि सर्वसाधारण के लिए उनके अणुव्रत सम्बन्धी विचार सदा सुलभ रह सकें।

'अणुव्रत की ओर' के लेख केवल श्लाघा-बुद्धि से ही नहीं लिखे गए हैं

उनमें तलस्पर्शी चिन्तन भी प्रस्तुत किया गया है। ऐसा लगता है आचार्य श्री तुलसी का वह आर्ष उपदेश अब एक समाज-दर्शन का रूप ले रहा है। हर एक दर्शन की उद्गम गाथा भी तो यही है कि पहले वह आर्ष उपदेशों के रूप में लोकग्राही बना और तत्पश्चात् तर्कजीवी मनीषियों के चिन्तन का विषय होकर दर्शन बना। बहुत सारे लेख विचार सामग्री की दृष्टि से भी अनूठे हैं। शिवाजी नरहरि भावे अणुव्रत-आन्दोलन के पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए अपना अभिमत व्यक्त करते हैं—जीवन शुद्धि के कार्य में मुख्यतः दो बाधाएं हमारे सामने आती हैं—विचारों की अनुदारता—संकोचशीलता और प्रचार की प्रबलता या आक्रमणशीलता। ये दोनों परम्पराएं सदा से चली आ रही हैं, जो जीवन-पथ को प्रशस्त नहीं बनने देतीं।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने एक ऐसा विचार रखा कि जो सद्विचार हमारे हृदय में अंकुरित हुए हैं, वे हमारे आचरण में आयें, किन्तु हमने उसका विपरीत अर्थ यह लगाया कि जो सद्विचार हमें मिले हैं, वे दूसरे को नहीं देने चाहिए। एक व्यायाम विद्या में पारंगत व्यक्ति अपनी विद्या दूसरे को नहीं बतलायेगा, चाहे उसके अवसान के साथ उसकी विद्या भी क्यों न समाप्त हो जाए। इस तरह हमारे समाज में ज्ञान और विद्या का संकोच होता गया। इसी तरह जाति आश्रित ऊंच-नीच की भेद-भावना भी विचार अनुदारता को बल पहुंचाती रही। अस्पृश्यता का भाव भी कम घातक नहीं रहा। इस तरह विचारों की संकोच-शीलता के कारण जीवन-शुद्धि का मार्ग अवरुद्ध होता गया।

दूसरा विचार पाश्चात्य दार्शनिकों ने हमारे सामने यह रखा कि हमने जो सद्विचार ग्रहण किए हैं, उनका अधिकाधिक विस्तार करना चाहिए। किन्तु जीवन में उन्हें आचरित करके ही प्रसारित करना चाहिए, यह आग्रह उन्होंने नहीं रखा। भारतीय-दर्शन का जीवन-सूत्र जहां 'आचारः प्रथमो धर्मः' रहा, वहां पाश्चात्य दार्शनिक इस जीवन-सूत्र को सामने रखकर न चले। इससे हुआ यह कि विचार-प्रसार को बल मिला, किन्तु आचार-पक्ष कमजोर और गौण बनता गया। इस तरह वहां सिद्धान्तों के प्रसार की जबरदस्ती भी रही। एक हाथ में शास्त्र

और दूसरे हाथ में शस्त्र की जहां स्थिति बनी, वहां विचार-प्रसार या आग्रह ही प्रमुख था ।

अणुव्रत-आन्दोलन के बारे में जब मैं सोचता हूँ तो ये दोनों बाधाएं वहां नजर नहीं आती हैं। साम्प्रदायिक आग्रह वहां नहीं है, इसलिए विचार-अनुदारता को स्थान नहीं मिलता। सद्विचारों को जीवन में उतारने का और भावना-प्रसार हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त अपनाया जाता है, इससे उसमें आचार-अभाव और आक्रमणशीलता का भाव पनप नहीं पाता । ये दोनों आन्दोलन के सर्वोपरि श्रेष्ठ पहलू हैं, जो इसके विकास का मंगल संकेत करते हैं ।

प्रसिद्ध विचारक श्री जैनेन्द्रकुमार अणुव्रत-आन्दोलन की उर्जस्विता व्यक्त करते हुए लिखते हैं—अणुव्रत यानी व्रत का आरम्भ । यह कोई ऐसा आदर्श नहीं है, जिसे अव्यवहारी कहकर टाल दिया जाए । सारा व्यवहार इसके साथ टिक सकता है; बल्कि देखेंगे कि व्यवहार उससे पुष्ट बनता है । जीवन बन्द नहीं होता, प्रत्युत व्यवस्थित होता है । अन्तर-विवेक वह अंकुश नहीं है, जो हमारी जीवन-चेतना को क्षत-विक्षत करता हो; वह तो उल्टे चैतन्य को स्वस्थ करता है । वह कभी प्राण वेग को कुण्ठित करने वाला नहीं बनता है, बल्कि वह उसे उर्जस्व करता है ।

राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद आन्दोलन के आरम्भ से ही उसके प्रत्येक कार्य-क्रम में गहरी अभिरुचि लेते रहे हैं। उन्होंने आन्दोलन को व्यक्तिगत जीवन से अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार तक आवश्यक व भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित माना है । वे एक स्थान पर लिखते हैं—यही कारण है कि विचारशील लोग अब जीवन के आध्यात्मिक पहलू पर विचार करने का आग्रह कर रहे हैं, जिससे वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मानव आध्यात्मिक तत्त्वों को भी अपने दैनिक जीवन में और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में ग्रहण करने का प्रयत्न करे । इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अणुव्रत-आन्दोलन इस दिशा में कई वर्षों से प्रशंसनीय कार्य कर रहा है । इसके लिए आन्दोलन के नेता आचार्य श्री तुलसी तथा दूसरे सदस्यगण बधाई के पात्र हैं । अणुव्रत-आन्दोलन भगवान् महावीर और अन्य जैन मुनियों तथा भारतीय सन्तों के आदर्शों से अनुप्राणित हुआ है, इसलिए आन्दोलन के प्रयास

तथा उसके आदर्श भारतीय सांस्कृतिक परम्परा से सर्वथा अनुकूल हैं और उसे समझने अथवा उसके पालन करने में हमारे लिए अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

जननेता श्री जयप्रकाशनारायण की मान्यता है कि भूदान और अणुव्रत-आन्दोलन की प्रवृत्तियां ऐसी हैं, जो हृदय-परिवर्तन द्वारा अहिंसक समाज की नव रचना में अग्रसर हो रही हैं; जिसे कायम करने के लिए रूस आदि देश प्रायः असफल ही दीख पड़ते हैं।

श्री जयप्रकाशनारायण का यह सुदृढ़ अभिमत है कि हमारे आदर्श की ओर बढ़ने के लिए आचार्य तुलसी ने बहुत सुन्दर कार्यक्रम रखा है।

योजना आयोग के सदस्य श्रीमन्नारायण आन्दोलन की गतिविधियों में बहुत रस लेते रहे हैं। वे इस आन्दोलन से बहुत आशावादी हैं और समाजवादी समाज-व्यवस्था की रचना में इसे सहायक मानते हैं। वे लिखते हैं—आत्म-विश्वास व सच्चाई के साथ नैतिक नियमों का पालन करने वाले मुट्ठी भर व्यक्ति भी सामाजिक वातावरण को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते। कार्य की शुद्धता के कारण प्रकाश अवश्य ही फैलेगा और जन जन का जीवन इतना प्रकाशमान हो उठेगा कि विश्वभर को इसकी अनुभूति हुए बिना नहीं रहेगी। इस आन्दोलन का पूरा परिचय आज भले ही अधिक लोगों को न हो, परन्तु अगर देश में थोड़े भी सुदृढ़ अणुव्रती हुए तो देश की उन्नति अवश्यम्भावी है। अणुव्रत-आन्दोलन मानव-मस्तिष्क की उपज नहीं है, बल्कि यह ईश्वरीय देन है।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि अणुव्रत-आन्दोलन लोगों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने में सफल होगा और ठोस नींव पर समाजवादी समाज-व्यवस्था की रचना में सहायक बन सकेगा। मैं आशा करता हूँ कि यह आन्दोलन दिन-प्रतिदिन तेजी पकड़ता जायेगा।

कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' आन्दोलन को सहस्रों वर्ष पूर्व भारतवर्ष के द्रष्टाओं द्वारा उपदिष्ट तत्त्व की अभिनव आवृत्ति मानते हुए लिखते हैं—मुनि प्रवर आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रारम्भ किया गया अणुव्रत-

आन्दोलन हमारे देश के नैतिक पुनरुज्जीवन की दिशा में एक मंगलमय एवं आवश्यक चरण निक्षेप है। भारतवर्ष के द्रष्टाओं ने सहस्रों वर्ष पूर्व मानव-समाज के उत्थान का, उसके नैतिक विकास का जो तत्त्व बुद्धिंगम, हृदयंगम एवं आचरणंगम कर लिया था, उसी सनातन तत्त्व की अभिनव आकृति यह आन्दोलन है।

प्रस्तुत पुस्तक अणुव्रत-आन्दोलन के इतिहास, उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि, नवीन समाज-रचना में उपयोगिता आदि विविध पहलुओं पर प्रकाश डालती है। मेरा अनुमान था कि उपलब्ध सामग्री एक ही आकार में समा जायेगी, पर उसकी बहुलता ने ऐसा होने नहीं दिया। इस संग्रह को दो भागों में विभक्त करना पड़ा है।

आचार्य श्री तुलसी को गुरु के रूप में पाकर तो मैं कृतकृत्य हूँ ही, किन्तु मेरे लिए यह भी गौरवास्पद है कि मुझे मुनि श्री नगराजजी का सतत मार्ग-दर्शन मिलता रहा है। मुनि श्री आन्दोलन के विचार और कर्तृत्व दोनों पक्षों के विकास में अहर्निश यत्नशील रहे हैं। आन्दोलन की प्रत्येक दिशा में उनका मूल्यवान् योग रहा है। प्रस्तुत उपक्रम भी उनके मार्ग-दर्शन का ही सुपरिणाम है।

२५ जून '६१
वृद्धिचन्द जैन स्मृति भवन
नयाबाजार, दिल्ली

—मुनि महेन्द्रकुमार 'प्रथम'

अनुक्रम

१

अणुव्रत : भारतीय संस्कृति का प्रतीक

—राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद

मानव-समाज की स्थिति ऐसी डांवाडोल क्यों हो कि मैत्री जैसे सहज और स्वाभाविक भाव पर जोर देने की जरूरत पड़े। किन्तु इस दुःखद और कटु सत्य से हम आंख नहीं मींच सकते कि समाज और संसार की स्थिति वास्तव में ऐसी है कि समाज के विभिन्न अंगों और राष्ट्रों के बीच मैत्री का नारा लगाना आवश्यक जान पड़ता है। इस बात को देखकर और भी खेद होता है कि यद्यपि कई शताब्दियों से मानव-समाज विज्ञान की उन्नति और भौतिक साधनों के विकास के कारण काफी आगे बढ़ चुका है। दुर्भाग्य से यह भौतिक प्रगति एकांगी रही, क्योंकि मानव उसी गति से जीवन के आध्यात्मिक पक्ष की उन्नति नहीं कर पाया है। यही नहीं, हम यह भी कह सकते हैं कि कुछ समय से आध्यात्मिक तत्त्वों की अवहेलना हुई है।

वैज्ञानिक आविष्कारों के बहुत आगे बढ़ जाने से मानव ने प्रकृति के साधनों पर इतना अधिकार कर लिया है कि विभिन्न प्रकार के विनाशकारी शस्त्रास्त्र उसके हाथ लग गये हैं। चिन्ता का तात्कालिक कारण यही है कि यदि राष्ट्रों में पारस्परिक मनमुटाव बना रहा और युद्ध के कारणों को दूर कर स्थायी शान्ति की स्थापना नहीं की जा सकी तो भावी युद्ध इतना भयंकर होगा कि उससे मानव-समाज का अस्तित्व और आधुनिक सभ्यता दोनों ही संकट में पड़ जायेंगे।

यही कारण है कि विचारशील लोग अब जीवन के आध्यात्मिक पहलू पर विचार करने का आग्रह कर रहे हैं, जिससे वैज्ञानिक प्रगति के साथ-साथ मानव आध्यात्मिक तत्त्वों को भी अपने दैनिक जीवन में और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार में ग्रहण करने का प्रयत्न करे। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अणुव्रत-आन्दोलन

इस दिशा में कई वर्षों से प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। इसके लिए आन्दोलन के नेता आचार्य श्री तुलसी तथा दूसरे सदस्यगण बधाई के पात्र हैं। अणुव्रत-आन्दोलन भगवान् महावीर और अन्य जैन मुनियों तथा भारतीय सन्तों के आदर्शों से अनुप्राणित हुआ है, इसलिए आन्दोलन के प्रयास तथा उसके आदर्श भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के सर्वथा अनुकूल हैं और उसे समझने अथवा उसके पालन करने में हमारे लिए अधिक कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

यह सौभाग्य का विषय है कि इस विचारधारा को बहुतेरे विदेशी लोग भी स्वीकार करने लगे हैं। सभी लोग यह स्वीकार करते हैं कि संसार की सबसे बड़ी आवश्यकता स्थायी शान्ति की स्थापना है। यह उद्देश्य तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह किसी भी राष्ट्र का नागरिक हो और किसी भी धर्म का अनुयायी हो, अपने मन में दूसरे के प्रति मैत्री की भावना का संचार करे और उसके अनुसार दैनिक जीवन में आचरण करे। इस दृष्टि से देखा जाये तो यह मानना पड़ेगा कि इस महान् प्रयास में छोटे से छोटे और बड़े से बड़े प्रत्येक व्यक्ति का सहयोग मूल्यवान् है। हम सब लोग मानव-समाज के सदस्य हैं और इस समय हमें दूसरों की चिन्ता न कर अपने-अपने आचार और व्यवहार को उन्नत करने की ओर ध्यान देना चाहिए। इसीमें व्यक्ति और समष्टि दोनों का हित सन्निहित है।

पिछले कई वर्षों में आचार्य श्री तुलसी के कई बार दर्शन मुझे प्राप्त हुए और उनके उपदेश सुनने का और उनके साथ वार्तालाप का मुझे अवसर मिला, उसका मेरे पर यह प्रभाव पड़ा कि अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन करके और उस काम को बढ़ाने के लिए अपना समय लगाकर आचार्य श्री तुलसी देश के लिए कल्याणकारी काम कर रहे हैं। यों तो उसके बिना न कोई व्यक्ति और न कोई देश उन्नति कर सकता है, पर विशेषकर ऐसे समय में जब हम स्वतन्त्रता प्राप्त कर अपना घर स्वयं सम्भालने लग गये हैं, उसकी आवश्यकता और अनिवार्यता और भी अधिक हो जाती है; इसलिए अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन एक महत्त्वपूर्ण काम हुआ है और मैं आशा करता हूं कि वह दिन प्रतिदिन जैसे आज तक बढ़ता आया है, उससे भी अधिक प्रगति के

साथ बढ़ता ही जायेगा।

यह सन्तोष की बात है कि आचार्यजी काल और देश की परिस्थिति को हमेशा सामने रखकर कार्यक्रम निर्धारित करते हैं और जो भिन्न-भिन्न श्रेणी के लोग हैं, जिनकी भिन्न-भिन्न समस्याएं होती हैं, उन सबमें घुसकर भिन्न-भिन्न रीति से संगठित रूप से सदाचार और चरित्र को प्रोत्साहन देने का काम किया जा रहा है। यह काम तो धर्मगुरुओं का ही हमेशा से रहा है और आज भी है। जितना असर धर्माचार्यों का, चाहे वह किसी भी धर्म अथवा पंथ के क्यों नहीं हों; लोगों पर पड़ता है, उतना दूसरों का नहीं। आज की स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक और महत्त्वपूर्ण काम हो रहा है, जिसकी सफलता प्रत्येक विचारशील व्यक्ति चाहता रहेगा।

मैं यह आशा करता हूं कि यह प्रयास अब व्यक्ति की शुभकामनाओं और मैत्रीपूर्ण भावनाओं से पुष्ट होकर मानव-समाज के लिए कल्याणकारी प्रभाव का रूप धारण करेगा। मैं और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं समझता, क्योंकि बात बहुत सरल है और कहने-सुनने की अपेक्षा विश्वास करने और जीवन में उतारने की अधिक है।

मैं इस आन्दोलन की सफलता की कामना करता हूं और मेरी यह प्रार्थना है कि संसार के सभी राष्ट्र और मानव-समाज के सभी अंग इस सद्भावना से प्रेरित हों और शान्ति स्थापना में योगदान दें।

२

अहिंसक समाज-रचना के लिए

भूदान और अणुव्रत

—श्री जयप्रकाशनारायण

हम भारतीयों के सम्मुख बहुत-सी पारिवारिक समस्याएं हैं, लेकिन उनसे बढ़कर सामाजिक और राष्ट्रीय भी हैं। हमें संकीर्ण स्वार्थ से बाहर निकल कर समाज-हित का चिन्तन करना चाहिए। समाज के बाहर हम लोगों के जीवन का कुछ भी अस्तित्व नहीं है। बाहर जो कुछ होता है, उसका असर हमारे ऊपर भी न्यूनाधिक मात्रा में पड़ता है। संकीर्ण वृत्ति को छोड़कर व्यापक वृत्ति को अपनाना हमारा प्रमुख कर्तव्य हो जाता है। अगर हम अपना दृष्टिकोण व्यापक नहीं रखेंगे तो राष्ट्र की कुछ ऐसी महत्त्वपूर्ण घटनाएं, जो घटित हो सकती हैं, हमारा अस्तित्व अवश्य मिटा देंगी। संकीर्ण स्वार्थ के प्रतिरोध में संसार के कोने-कोने में विद्रोहात्मक घटनाएं घटीं हैं, जिनका परिणाम बुरा ही रहा है।

अब समय आ गया है कि व्यापारी वर्ग सिर्फ धनार्जन ही अपना परम धर्म या साध्य न बनायें। उसे सोचना चाहिए कि व्यापार की वृद्धि के साथ-साथ समाज में सुख-शान्ति की भी अभिवृद्धि हो। अपने स्वार्थ या लाभ के आगे समाज का हित नहीं भूलना चाहिए। व्यापार का लक्ष्य धन और वस्तुओं के विनिमय द्वारा सिर्फ अपने स्वार्थ और आवश्यकता की पूर्ति नहीं, बल्कि सारे समाज की समुचित आवश्यकता की सम्पूर्ति होना चाहिए। आज व्यापार में जो अनैतिकता अपनाई जा रही है और यह कहना कि बिना झूठ बोले व्यापार चल ही नहीं सकता, बिलकुल निराधार और व्यवसाय को अव्यावहारिक दृष्टि से समुचित करार देना है। हम अपने को धार्मिक कहते हैं, पर धर्माचरण से बिलकुल दूर रहते हैं। किसी भी धर्म में असत्य, शोषण, हिंसा, पर-पीड़न आदि को उच्च

स्थान नहीं, सभी की दृष्टि में ये सब हेय हैं। जितने धार्मिक सम्प्रदाय हैं, उनके पीछे एक ही भावना है—आनन्द, एक का नहीं, सबका। सम्प्रदायों की अपनी भाषाएं, विचार एवं पथ अवश्य भिन्न-भिन्न हैं, पर जनसाधारण के हित की भावना सबमें श्रेष्ठतम उपदेशित है। पर आज हम अपने इस परम उद्देश्य को भूल गये हैं और शोषण तथा संग्रह को सब कुछ मान बैठे हैं। इसी परिस्थिति में ही विनोबा ने अध्यात्म के मूल सिद्धान्तों पर आधारित अपनी क्रान्ति का श्रीगणेश किया है। उनकी क्रान्ति सत्याग्रह, प्रेम और हृदय-परिवर्तन की है। रूस और फ्रांस की क्रान्तियों के समान हिंसक और रक्त-रंजित नहीं, क्योंकि हृदय-परिवर्तन के बजाय शक्ति के बल से किये हुए परिवर्तनों के कारण कोई स्थायित्व नहीं है और असमानता, परतन्त्रता आदि भी ज्यों की त्यों मौजूद है।

आज हमारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि आचार्य विनोबा भावे एवं आचार्य तुलसी जैसी दिव्य विभूतियां हमारा पथ-प्रदर्शन कर रही हैं। दोनों महापुरुष मानवता के प्रतिष्ठापन द्वारा समता, सहिष्णुता स्थापित करना चाहते हैं तथा शोषण का अन्त चाहते हैं। भूदान और अणुव्रत-आन्दोलन की प्रवृत्तियां ऐसी हैं, जो हृदय-परिवर्तन द्वारा अहिंसक समाज की नव रचना में अग्रसर हो रही हैं; जिसे कायम करने के लिए रूस आदि देश प्रायः असफल ही दीख पड़ते हैं। अपने देश की निर्धनता देखने से पता चलता है कि कितना असीम दुःख समाज में व्याप्त है। निर्धनों के साथ कितना अन्याय हो रहा है। इन्हीं अन्यायों एवं शोषणों के कारण ही शोषित वर्ग के कुछ नवोदित नेता रक्त-रंजित क्रान्ति की दुन्दुभि बजाने तथा शोषकों को धन-विहीन एवं उनकी प्रवृत्तियां समूल नष्ट कर देने के लिए लोगों को आह्वान कर रहे हैं।

अणुव्रत-आन्दोलन भी सर्वोदय आन्दोलन का एक सहयोगी ही है। इससे भी देश-विदेश के प्रायः सभी विचारक और नेता परिचित हो ही गये हैं। हमारे आदर्श की ओर बढ़ने के लिए आचार्य तुलसी ने बहुत सुन्दर क्रम रखा है। विनोबाजी और तुलसीजी सभी जाति और वर्ग के लिए हैं, दोनों सबका भला चाहते हैं। आचार्य तुलसीजी से बम्बई में वार्तालाप करने पर उनके उच्च उद्देश्यों की झलक मिली। उनका कहना है कि जब सारी हिंसक शक्तियां

एकत्रित हो सकती हैं, तब अहिंसक शक्तियां भी एक हो सकती हैं और सबके सामूहिक प्रयास और प्रयत्न से अवश्य ही अहिंसक समाज की कल्पना पूरी हो सकेगी। सबको मिलकर काम करने में शीघ्र सफलता मिलेगी।

हमारे सामने यह प्रश्न अवश्य हो सकता है कि किस पद्धति के द्वारा सबका हित हो सकता है, शोषण मिट सकता है ? क्या सरकार शोषण को मिटा सकती है ? नहीं, बिलकुल असम्भव है। यह जनता कर सकती है। मनुष्य की आन्तरिक शक्ति के द्वारा यह कार्य पूरा हो सकता है। संविधान द्वारा सर्वोदय असम्भव है। जैसा कि आचार्य तुलसी कहा करते हैं कि व्यक्ति-व्यक्ति से समाज-परिवर्तन होगा और जब तक व्यक्ति नहीं सुधरेगा, तब तक कुछ नहीं होगा। ध्यान से देखा जाये तो उनकी इस वाणी में कितना तत्त्व भरा पड़ा है। समाज का मूल व्यक्ति ही है। व्यक्ति से समुदाय, समुदाय से समाज का रूप सामने आता है। समाज तो प्रतिबिम्ब है। जैसा मनुष्य रहेगा, वैसा समाज बनेगा और फिर जैसा समाज बनता रहेगा, वैसा-वैसा परिवर्तन मनुष्यों में भी आता रहेगा। अस्तु, सर्वप्रथम व्यक्ति-सुधार पर जोर देना चाहिए।

आचार्य तुलसी यह भी कहते हैं कि सब अपनी-अपनी आत्म-शुद्धि करें। यह और अच्छा है। अगर सब स्वतः आत्म-शुद्धि कर लें; तो क्रान्ति की क्या आवश्यकता है ? महात्मा गांधी भी समाज-सुधार के पहले व्यक्ति-सुधार पर जोर देते रहे हैं साम्यवादी आदि क्रान्तियां बाह्य सुधार की द्योतक हैं। किन्तु जब तक आन्तरिक सुधार नहीं हुआ, तब तक कुछ नहीं हुआ, बाह्य सुधार तो क्षणिक और सामयिक कहलायेगा। वह आन्तरिक सुधार के समान शाश्वत कहां ? अगर हम आन्तरिक सुधार को प्राथमिकता नहीं देंगे तो हमारा कार्य अधूरा ही रह जायेगा। रूस, अमेरिका, फ्रांस आदि देशों में आज भी असमानता, परतन्त्रता, असहिष्णुता, भ्रातृत्वहीनता, पूंजीवादिता आदि किसी न किसी रूप में अवश्य विद्यमान हैं। विचार-स्वातन्त्र्य की आज भी सुविधा नहीं। एक तरह से अधिनायकवाद का बोलबाला ही है। वैतनिक असमानता बहुत है। अस्तु, शक्ति और हिंसा पर आधारित क्रान्ति से उद्देश्य पूर्ति नहीं, वह तो एकमात्र हृदय-परिवर्तन पर आधारित है। इसलिए हम लोगों को

चाहिए कि उक्त देशों के समान दुर्दिन आने से बचाने तथा समाज में उथल-पुथल न आने देने के लिए उचित मात्रा में त्याग और निःस्वार्थ भावना को जीवन में उतारें। महात्माजी ने भी व्यक्ति को केन्द्र मानकर उसके सुधार पर जोर दिया है और राजतन्त्र के स्थान पर लोकतन्त्र को स्थापित करने की अपनी नेक सूझ दी है।

राजनीति और कानून की चर्चा विशेष हुआ करती है। आचार्य श्री तुलसी तो राजनीति और कानून की खुले शब्दों में आलोचना करते हैं। वे कहते हैं कि क्या कानून किसी स्वार्थी को निःस्वार्थी या पर-स्वार्थी बना सकता है? कानून तो एक दिवामात्र है। इसलिए राजनीति और कानून के परे आचार्य विनोबा और आचार्य तुलसी के मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। जिस क्रान्ति से हृदय और विचारों में परिवर्तन नहीं आया, वह क्रान्ति नहीं। हिंसा पर आधारित क्रान्ति से हृदय-परिवर्तन भी सम्भव नहीं। उसके लिए तो प्रेम और सद्भावना का सहारा लेना होगा।

क्रान्ति कोई नहीं। जब-जब समाज में शिथिलाचार हुआ, तब-तब अवतारों एवं महापुरुषों द्वारा विचारों में क्रान्ति लाई गई। धर्म और नीति में से अधर्म और अनीति को निकाल फेंका गया। समाज का सुधार किया गया। धर्म और नीति समाज के अनुकूल बनाई गई। समाज में एक नया विपर्यय हुआ। धार्मिक, सांसारिक और सामाजिक जीवन के बीच की दीवार तोड़ी गई। महात्मा गांधी, विनोबा भावे और आचार्य तुलसी भी ऐसी ही अध्यात्मनिष्ठ क्रान्ति की उद्घोषणा लिए हैं। अनावश्यक एवं समाज-हित के लिए घातक रूढ़ियों का अन्त करना, इन्होंने भी आवश्यक समझा। भगवान् बुद्ध का 'धर्मचक्र प्रवर्तन' या धार्मिक क्रान्ति भी सर्वोदय या समाज-सुधार का दिशा-संकेत था। अणुव्रत-आन्दोलन भी नैतिक क्रान्ति का एक चिर प्रतीक्षित चरण है।

ऐसे संगठित रूप से काम होना चाहिए, जिससे सारी समस्याएं साथ-साथ हल हो जायें। भूदान-आन्दोलन का कार्य सिर्फ भूमिहीनों को भूमि बांटने तक ही नहीं, पर नये समाज का रूप बनाने का नैमेत्तिक कार्य है। भूमि की समस्या तक ही हल करना इसका क्षेत्र या अभिप्राय नहीं। जिस तरह महात्मा

गांधी का १९३० का 'नमक आन्दोलन' नमक तक ही सीमित नहीं रहा, वह तो स्वतन्त्रता की मांग का एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन था। आततायियों को भगाने, उनके अत्याचार को सामने लाने तथा परतन्त्र भारतीयों की भीरुता को भगाकर उनमें आत्म-बल लाने तथा स्वतन्त्रता के मार्ग पर अग्रसर होने का एक पथ था। हमारा भूदान आन्दोलन भी उसी तरह महान् है। हमारा नारा सर्वोदय का है। एकांगी नहीं बल्कि सर्वांगी है।

सम्पत्तिदान और अणुव्रत-आन्दोलन की भी भावना एक ही है। एक समाज के हक को उसे दे देने के लिए बाध्य करता है, प्रेरित करता है या उसे सीख देता है तथा दूसरा संग्रह को ही त्याज्य बताता है और जो कुछ है उसे दान स्वरूप देने को नहीं, बल्कि त्याग स्वरूप समाज के लिए छोड़ देने की भावना प्रदर्शित करता है। अणुव्रत-आन्दोलन परिग्रह मात्र को पाप का मूल मानता है। इसके अनुसार संग्रह ही हिंसा की जड़ है। जहां संग्रह है, वहां शोषण और हिंसा अपने आप मौजूद हैं।

●

३

एक चिराग ! एक ज्योति !

—तात्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष श्री उ० न० ढेबर

जीवन के कई पहलू होते हैं। मनुष्य को अपने शरीर, परिवार, उसकी आर्थिक स्थिति और साथ ही साथ नैतिक जीवन-विकास की साधना की फिकर करनी पड़ती है। पहले परिवार के लिए इन्सान चिन्ता करता है, उसका दिमाग परेशान रहता है और आगे चलकर समाज की फिकर करता है। यह सब इसलिए कि जिससे वह अपने निजी परिवार व समाज के जीवन को सम्भाल सके। परन्तु मनुष्य पशु नहीं, उसका जीवन खाने-पीने तक ही सीमित नहीं है। उसमें पशु की अपेक्षा दो बातें विशेष रूप से हैं, एक तो आत्म-स्फुरणा और दूसरी विवेक-बुद्धि। इनके उपयोग से ही मनुष्य का जीवन बनता है, आगे उसे बनाना है। अणुव्रत— आत्म-स्फुरणा का सन्देश ही जन-जन तक पहुंचा रहा है।

कुछ लोग सोचते हैं कि आर्थिक विकास हुआ तो सब ठीक हो जायेगा, पर वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। दुनिया में ज्यादातर जो लोग हैं, वे न तो परिवार को छोड़ सकते हैं और न उसके मोह को, उसकी याद को; ऐसी हालत में कोई सहज मार्ग ढूंढने की जरूरत है। आचार्य श्री तुलसी ने करुणा बुद्धि से हमें वह रास्ता दिखाने के लिए अणुव्रत-आन्दोलन शुरू किया है, जो जीवन के नैतिक स्तर को ठीक करता है। जिस तरह चतुष्कोण के एक कोण के ठीक हो जाने पर बाकी के तीन कोण स्वतः ठीक हो जाते हैं; उसी तरह जीवन के नैतिक पक्ष के ठीक हो जाने से उसके अन्यान्य पहलू भी स्वतः सुधर जाते हैं।

रुपया-पैसा जीवन का लक्ष्य नहीं है। इससे आदमी न गिरता है, न चढ़ता है। यही कारण है भारतीय संस्कृति ने रुपये-पैसे पर कभी जोर नहीं दिया। भारत की यह सांस्कृतिक विशेषता रही है। हमारे मस्तक सदैव उन अकिंचनों के चरणों में झुके हैं, जिन्होंने मानव-जाति को आगे से आगे ले जाने की

कोशिश की, जिन्होंने रुपये-पैसे से इमारत बनाने के प्रयत्न करने के बजाय सदा नैतिक-विकास द्वारा मानव-जीवन को उन्नत करने की चेष्टा की। गांधीजी के पास क्या था ? आचार्य श्री तुलसी के पास कौन से रुपये हैं ? हम उनके आगे झुकते हैं, क्यों ? क्योंकि उन्होंने उस एक नैतिक कोण को ठीक किया है, जिसके द्वारा हमारे जीवन का बहुमुखी विकास होने वाला है।

हम भी सोचें, इस ओर हम क्या कर सकते हैं ? पहला कदम रखने में कठिनाई जरूर महसूस होती है, पर यह ठीक वैसी ही है जैसे सर्दी के मौसम में तालाब में पैर देने की शिक्षा। मन का स्वभाव ही अधिक से अधिक कठिनाइयों से बचने का है। इन्द्रियों का प्रभाव सहज ही घटना नहीं चाहता। हमारा दिमाग बन गया है कि रुपये-पैसे के बिना काम नहीं चल सकता, पर दृढ़ निष्ठा के सामने रुपये-पैसे का आकर्षण और कठिनाइयों का भय दूर हो जाता है।

सूरज के निकलने पर अंधेरा भाग खड़ा होता है और उसके अस्त होते ही चारों ओर अन्धकार अपनी चादर फैला देता है, परन्तु उस हालत में भी यदि हमें कोई छोटा-सा दीपक मिल जाये तो अपना रास्ता देख सकते हैं। आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में हमें एक चिराग दिया है, एक ज्योति दी है, उसे लेकर हम आज अनैतिकता के तिमिराच्छन्न वातावरण में नैतिक पथ प्राप्त कर सकते हैं, उसकी रोशनी में हम अपना काम निकाल सकते हैं। हर एक के मन में शक्ति छिपी है, उसको जागृत करके प्रत्येक व्यक्ति विकास कर सकता है।

आज शरीर को खिलाने-पिलाने व मन को बहलाने के लिए तरह-तरह की कोशिशें हो रही हैं, पर शरीर तो मिटने वाला है। धन, इमारत और वैभव आदि सदा टिकने वाले नहीं हैं। फिर वह कौन-सी चीज़ है, जो इन सबके जाने पर भी बनी रहती है और जो इनके आने से पहले भी थी। वह चीज आत्म-तत्त्व है। उस चीज को देखें, जिस पर शरीर चल रहा है, सारा संसार टिका हुआ है। उसे देखने व समझने की जरूरत को समझें।

भारतीय ऋषियों ने इसी आत्म-तत्त्व को खोजकर समझाया है। जहां तक

शरीर का प्रश्न है, उसे खिलाने-पिलाने की कोशिश करना बालू पर भींत बनाने जैसा लगता है।

भारत ने इसमें संशोधन करके बताया कि जब तक इन्सान आत्मा की ओर नहीं देखता, तब तक उसमें व पशु में कोई अन्तर नहीं, पर आज दुनिया ने इस सही तत्त्व को भुला दिया है और वह भौतिक-समृद्धि की ओर भाग रही है। अब हालत यह हो गई है कि हम दिन-रात राम, कृष्ण, बुद्ध व महावीर का जाप करते हैं, पर हमारा व्यवहार इतना नीचे चला जा रहा है कि वे महा-पुरुष हमें देखें तो क्या कहेंगे ? उनकी आंखों में आंसू के सिवा कुछ नहीं दिखाई देगा और फिर जहां आंखों में आंसू हों, वहां आशीर्वाद कैसा ?

हमारे बोलने और दिनभर के आचरण में कितना अन्तर आ गया है। अणुव्रत-आन्दोलन उस अन्तर को पाट देना चाहता है। अणुव्रत के नवें वार्षिक पवित्र दिन पर हम सब मिल रहे हैं। इस पुण्य अवसर पर आचार्य श्री तुलसी की शिक्षा को हृदय से स्वीकार करें, इस ख्याल को लेकर कि इसमें बहुत बड़ी ताकत भरी है। संकल्पों और व्रतों की असीम शक्ति हमें उस मंच पर ले जायेगी, जहां न हमारा विनाश होगा और न समाज व परिवार का। अणुव्रत-आन्दोलन की यह मंगलकारी भावना देशभर में फैले, मेरी ईश्वर से यही प्रार्थना है।

●

४

अणुव्रत : एक ईश्वरीय देन

—प्रो० श्रीमन्नारायण
सदस्य, योजना आयोग

स्वराज्य प्राप्ति के बाद देश के समस्त वर्गों का कार्य एवं व्यवहार हमारी संस्कृति के अनुरूप नहीं रहा है। किसी न किसी रूप में वहां बुराई घुस गई है। प्राचीन काल से ही हमारी संस्कृति त्याग और संयम की द्योतक रही है। लोगों ने सच्चे दृष्टिकोण से चिन्तन करना छोड़, भोग और विलास के पथ पर अग्रसर होना आरम्भ कर दिया है। मैं यह मानता हूं, जन-जन में फैली हुई इस अमानवीय भावना के परिवर्तन में अणुव्रत-आन्दोलन का सफल प्रयास है।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि आज के जमाने में बड़ी-बड़ी बातें बनाने वाले तो बहुत होते हैं, परन्तु उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य बहुत हीन और छोटे होते हैं। आज अणु-शक्ति का युग है। संसार के बड़े-बड़े राष्ट्र व नेतृ-वर्ग मानवमात्र को शान्ति और सुख का मार्ग प्रदर्शित करने में प्रयत्नशील हैं। परन्तु लोगों को सच्चे अर्थों में सुख या शान्ति प्राप्त होगी या नहीं ; यह एक सन्देहयुक्त बात है। आचार्य श्री तुलसी ने जीवन की छोटी पर महत्त्वपूर्ण बातों के लिए व्रतों की भाषा में हमारा ध्यान उस ओर आकर्षित किया है। ये व्रत यद्यपि सरसरी तौर पर देखने से सूक्ष्म मालूम पड़ते हैं, परन्तु इनमें व्यक्ति-व्यक्ति की भावना को बदल डालने की भारी शक्ति छिपी हुई है। यह समझने की चीज है। सब व्रतों को छोड़कर अगर एक भी व्रत को जीवन में उतार लें तो बहुत कुछ हो सकता है।

हमारे देश के और विदेशों के मूलभूत सिद्धान्तों में बड़ा अन्तर है। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के कथनानुसार हमारे देश का मजदूर दिनभर कार्य करने के बाद रात को भजन-कीतन करता है; वहां एक विदेशी मजदूर दिन भर कार्य करने के बाद रात को शराब पीता है, टेलिविजन देखता है।

आज भारतवर्ष में ऐसे भी सन्त पाद-विहार करते हैं, जो देश के विभिन्न भागों और वर्गों में घूम-घूम कर आत्म-चिन्तन एवं त्याग की भावना प्रस्फुटित

करते हैं और जन-जन को अपने नैतिक पुनरुत्थान के लिए आह्वान करते हैं। यह हमारे लिए गौरवास्पद बात है।

हमें यह निःसन्देह मानना पड़ेगा कि लोग त्यागमय जीवन को अपनाने में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। जैसा कि मैंने प्रत्यक्ष देखा, किस प्रकार लोग अपने आप अणुव्रती-जीवन को अंगीकार करते हैं। देश के नेताओं ने त्याग किया और उसके फलस्वरूप हमें आजादी मिली। त्याग का फल सदा मीठा होता है, यह भी हमने देखा। परन्तु स्वराज्य-प्राप्ति के बाद हमारे पास त्याग का कोई कार्यक्रम नहीं रहा। मेरा ख्याल है कि देश के भावी नेताओं को यदि अभी से त्याग की प्रेरणा दी जाये तो भारत का भावी चित्र कैसा होगा? यह अभी अत्यन्त सुस्पष्ट दिखाई दे सकता है।

आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत-आन्दोलन एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है। नाम तो उसका अणुव्रत है, अर्थात् छोटे व्रतों को लेना। लेकिन हमें यह याद रखना चाहिए कि छोटे-छोटे कामों के करने से ही अन्त में बड़े से बड़े काम सरलतापूर्वक किये जा सकते हैं। वर्तमान समाज में ऐसी कई बुराइयां हैं, जिनके कारण देश में दूषित वातावरण फैल गया है। चोरबाजारी, रिश्वत-खोरी, अदालतों में झूठी गवाही देना, सगे सम्बन्धियों के लिए पक्षपात करना, आदि बुराइयों से भारत का मस्तक आज नीचा हो गया है। इस कलंक को मिटाने के लिए सिर्फ भाषण देने, लेख लिखने व प्रस्ताव पास करने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए यह जरूरी है कि जनता के बीच रचनात्मक कार्य किया जाये और लोगों का चरित्र ऊंचा उठाने की कोशिश की जाये। राष्ट्रपिता महात्मा गान्धी ने अपना रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने इसी दृष्टि से रखा था। इन दिनों आचार्य विनोबा भावे का भूदान तथा सम्पत्ति दान आन्दोलन सामाजिक और आर्थिक दृष्टि के अलावा एक बड़ा नैतिक और आध्यात्मिक आन्दोलन भी हैं। आचार्य श्री तुलसी के अणुव्रत-आन्दोलन को भी मैं इसी दृष्टि से देखता हूं। मैं इस आन्दोलन से बहुत प्रभावित रहा हूं, क्योंकि यह जीवन की छोटी से छोटी आवश्यक बातों पर जोर देता है। साधारणतया जीवन के छोटे कार्यों के प्रति हम अपने-अपने उत्तरदायित्व को भूल जाते हैं और बड़े-बड़े कार्यों में ही बड़ी दिलचस्पी दिखाते हैं। तथ्य यह है कि जब तक

हम अपने जीवन की छोटी बातों की ओर ध्यान नहीं देंगे, तब तक महान् कार्यों में सफल नहीं हो सकेंगे ।

अणुव्रत-आन्दोलन में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति व्रत लेते हैं । वे व्रत उनके दैनिक जीवन के व्यावहारिक पहलुओं को छूते हैं । साथ ही साथ वे सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य के पालन की भी शपथ लेते हैं । इन प्रतिज्ञाओं में घूस, भ्रष्टाचार, अस्पृश्यता और आर्थिक शोषण के नियम भी सम्मिलित हैं । जनता का नैतिक स्तर ऊंचा उठाने के लिए इन सामाजिक व आर्थिक बुराइयों के प्रति हमारा ध्यान अधिक केन्द्रित होना चाहिए ।

आज हम हमारे राष्ट्र के आर्थिक जीवन के निर्माण में जुटे हुए हैं, लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिए कि नैतिक योजनाओं के बिना सिर्फ आर्थिक योजनाएं प्रभावशाली नहीं बन सकतीं । मैं अणुव्रत-आन्दोलन को नैतिक संयोजन का एक क्रान्तिकारी कदम मानता हूं । नैतिक-विकास की योजनाओं के बिना हमारी आर्थिक योजनाओं के स्रोत सूख जायेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है ।

अणुव्रत जैसे आन्दोलन में संख्या की अपेक्षा गुण-विकास पर ध्यान रखना आवश्यक है । मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अणुव्रत-आन्दोलन का दृष्टिकोण ऐसा ही है । आत्मविश्वास व सच्चाई के साथ नैतिक नियमों का पालन करने वाले मुट्ठी भर व्यक्ति भी सामाजिक वातावरण को प्रभावित किये बिना नहीं रह सकते । कार्य की शुद्धता के कारण प्रकाश अवश्य ही फैलेगा और जन-जन का जीवन इतना प्रकाशमान हो उठेगा कि विश्वभर को इसकी अनुभूति हुए बिना नहीं रहेगी । इस आन्दोलन का पूरा परिचय आज भले ही अधिक लोगों को न हो, परन्तु अगर देश में थोड़े भी सुदृढ़ अणुव्रती हुए तो देश की उन्नति अवश्यम्भावी है । अणुव्रत-आन्दोलन मानव-मस्तिष्क की उपज नहीं है, बल्कि यह ईश्वरीय देन है ।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि अणुव्रत-आन्दोलन लोगों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने में सफल होगा और ठोस नींव पर समाजवादी समाज-व्यवस्था की रचना में सहायक बन सकेगा । मैं आशा करता हूं कि यह आन्दोलन दिन प्रतिदिन तेजी पकड़ता जायेगा ।

●

५

आन्दोलन के श्रेष्ठ पहलू

—श्री शिवाजी नरहरि भावे

परमार्थ-सत्ता के अस्तित्व में जो संगठन या समुदाय बनता है, वह बड़ा मंगलकारी होता है। परमार्थ स्वयं मंगल होता है, वहां स्वार्थ की बात तो नहीं होती। अहिंसा और संयम की गंगा में गोता लगाने के लिए इतना विशाल जन-समुदाय यहां इकट्ठा हुआ है, इसलिए मुझे कहना चाहिए कि यह समुदाय मंगल की ओर एक-एक चरण बढ़ा रहा है। अहिंसा और संयम के आचरण से अधिक मांगलिक कार्य और क्या हो सकता है ? अतः मंगल या परमार्थ का जो पक्ष बलवान् बन रहा है, वह शुभ का संकेत है और हमें इसके प्रसार के लिए प्रयास करना चाहिये। आचार्य श्री तुलसीजी इसके लिये प्रयत्नशील हैं। उनमें मैंने सामार्थ्य का अनुभव किया है। विद्या, त्याग और दार्शनिकता से अधिक उनमें एक और श्रेष्ठता है—वे अकारण स्नेह के स्रोत हैं। यह हमारे लिए गौरव का विषय है।

मानव-जीवन का सर्वोच्च ध्येय जीवन-शुद्धि है। मैं इसी ध्येय की पूर्ति के लिए अणुव्रत-आन्दोलन को एक आवश्यक और उपयोगी कार्य मानता हूं। कई भाइयों ने मुझे बताया कि अणुव्रत के मूल में सम्प्रदाय-सिद्धि के तत्त्व हैं। जहां तक मैं जान पाया हूं इसके पीछे यह भावना नहीं है। अगर सम्प्रदाय-सिद्धि के लिए भी अणुव्रत-आन्दोलन जैसे लोकोपयोगी कार्यक्रम को चलाया जाये तो कोई खतरा आने वाला नहीं है। उस प्रयास से मानव-जीवन की शुद्धि ही होगी।

जीवन-शुद्धि के कार्य में मुख्यतः दो बाधाएं हमारे सामने आती हैं—विचारों की अनुदारता—संकोचशीलता और प्रचार की प्रबलता या आक्रमण-शीलता। ये दोनों परम्पराएं सदा से चली आ रहीं हैं, जो जीवन-पथ को प्रशस्त

नहीं बनने देतीं।

हमारे प्राचीन ऋषियों ने एक ऐसा विचार रखा कि जो सद्‌विचार हमारे हृदय में अंकुरित हुए हैं, वे हमारे आचरण में आयें, किन्तु हमने उसका विपरीत अर्थ यह लगाया कि जो सद्‌विचार हमें मिले हैं, वे दूसरे को नहीं देने चाहिएं। एक व्यायाम विद्या में पारंगत व्यक्ति अपनी विद्या दूसरे को नहीं बतलायेगा, चाहे उसके अवसान के साथ उसकी विद्या भी क्यों न समाप्त हो जाये। इस तरह हमारे समाज में ज्ञान और विद्या का संकोच होता गया। इसी तरह जाति आश्रित ऊंच-नीच की भेद-भावना भी विचार-अनुदारता को बल पहुंचाती रही। अस्पृश्यता का भाव भी कम घातक नहीं रहा। इस तरह विचारों की संकोचशीलता के कारण जीवन-शुद्धि का मार्ग अवरुद्ध होता गया।

दूसरा विचार पाश्चात्य दार्शनिकों ने हमारे सामने यह रखा कि हमने जो सद्‌विचार ग्रहण किये हैं, उनका अधिकाधिक विस्तार करना चाहिए। किन्तु जीवन में उन्हें आचरित करके ही प्रसारित करना चाहिए, यह आग्रह उन्होंने नहीं रखा। भारतीय-दर्शन का जीवन-सूत्र जहां 'आचारः प्रथमो धर्मः' रहा, वहां पाश्चात्य दार्शनिक इस जीवन-सूत्र को सामने रखकर न चले। इससे हुआ यह कि विचार-प्रसार को बल मिला, किन्तु आचार-पक्ष कमजोर और गौण बनता गया। इसी तरह वहां सिद्धान्तों के प्रसार की जबरदस्ती भी रही। एक हाथ में शास्त्र और दूसरे हाथ में शस्त्र की जहां स्थिति बनी, वहां विचार-प्रसार का आग्रह ही प्रमुख था।

अणुव्रत-आन्दोलन के बारे में जब मैं सोचता हूं, तो ये दोनों बाधाएं वहां नजर नहीं आती हैं। साम्प्रदायिक आग्रह वहां नहीं है, इसलिए विचार-अनुदारता को स्थान नहीं मिलता। सद्‌विचारों को जीवन में उतारने का और भावना-प्रसार में हृदय-परिवर्तन का सिद्धान्त अपनाया जाता है, इससे उसमें आचार-अभाव और आक्रमणशीलता का भाव पनप नहीं पाता। ये दोनों आन्दोलन के सर्वोपरि श्रेष्ठ पहलू हैं, जो इसके विकास का मंगल संकेत करते हैं।

इन बाधाओं की तरह कुछ सुविधाएं भी हमारे सामने हैं। और उनकी भी

एक परम्परा है। भारत का प्राचीन लोक-जीवन सुखी था। लोक-संख्या कम थी, इसलिए जीवन-कलह भी कम था। जीवन-कलह की कमी के कारण जीवन-सन्तुलन बना रहता था। इस स्थिति से व्यक्ति को सोचने, समझने और चिन्तन करने का अवसर मिलता था। इस तरह यहां का लोक-जीवन एक योगी की तरह था और यहां की संस्कृति योगी-संस्कृति थी। पश्चिम की संस्कृति उद्योग की संस्कृति है। वहां की जनता में जीवन-सन्तुलन नहीं है। अतः वहां अधिक साधनों और सुख-सुविधाओं की अपेक्षा रहती है और उस अपेक्षा-पूर्ति के लिए वहां नाना प्रयोग चलते हैं। वह प्रायोगिक संस्कृति है। मध्यपूर्व के रेगिस्तानों में प्रवासी संस्कृति है और एक बाल-संस्कृति है, जिसे हम जंगली जातियों की संस्कृति कह सकते हैं। इस तरह पांच संस्कृतियां हमारे सामने आती हैं। पांचों संस्कृतियों में ही जीवन-शुद्धि के कुछ न कुछ अनुकूल तत्त्व मिल सकते हैं। हमें उन अनुकूलताओं को ग्रहण कर जीवन-शुद्धि के पथ में आगे बढ़ना चाहिए।

इसी तरह मनुष्य के व्यक्तिशः जीवन में भी दो बाधाएं और पांच सुविधाएं हैं।

मन, शरीर और आत्मा के संयोग से व्यक्ति का निर्माण होता है। मन का स्वभाव रजोगुण, शरीर का स्वभाव तमोगुण और आत्मा का स्वभाव मुक्ति है। रजोगुण और तमोगुण का अन्त हुए बिना जीवन-मुक्ति नहीं होती, अतः इन दोनों बाधाओं को मिटाने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार पांच सुविधाएं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह हैं, जो जीवन-शुद्धि के मूल तत्त्व हैं।

इस तरह मैंने अनुभव किया है कि अणुव्रत-आन्दोलन विचार-अनुदारता और आक्रमणशीलता से परे व्रतात्मक आन्दोलन है, जिसकी जीवन-शुद्धि के लिए महती आवश्यकता है। मैं आशा करता हूं कि यह आन्दोलन अधिकाधिक प्रसारित होगा और आचार्य श्री तुलसी का विराट् व्यक्तित्व इस पुनीत कार्य में सफलता प्रदान करेगा।

६

सर्वहितकारी अणुव्रत-आन्दोलन

डा० विश्वेश्वरप्रसाद, एम० ए० डी० लिट्,
अध्यक्ष—इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

धर्म के लक्षण सर्वव्यापी हैं और उनका किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बन्ध नहीं रहता है। परन्तु जब तक उसे जीवन में धारण नहीं किया जाता, धर्म सार्थक नहीं हो सकता, अतः धर्म के लक्षणों की स्पष्ट परिभाषा और उनपर पूर्णरूपेण चलना ये दो बातें समाज के उद्भव के लिए नितान्त आवश्यक हैं। जब-जब समाज विश्रृंखल हो जाता है और उसका पतन होने लगता है तो इस अवनति का मूल कारण समाज के व्यक्तियों की धर्म के प्रति उपेक्षा होती है। यदि समाज उन्नतिशील होता है तो उसके व्यक्तियों की धर्म के प्रति निष्ठा होती है और अपने आचरण में धर्म के ध्रुव लक्षणों का समुचित व्यवहार करते हैं। अवनति से उन्नति के मार्ग का पथ-प्रदर्शन महापुरुष करते हैं और उनका संकेत अथवा उपदेश जनता को धर्मरत करने के लिए होता है। हमारे समाज में किन्हीं कारणों से साधारण जन-समुदाय का दृष्टिकोण आध्यात्मिक न रहकर व्यावहारिक हो गया है और प्रगति उलटी ओर ही है, जिसका प्रमाण यही है कि क्षणिक लोभ में मनुष्य कर्तव्यहीन हो जाता है और अकर्तव्यता को ही मान्य समझता है। जो संस्था या महापुरुष समाज की इस दुर्गति का ज्ञान कराता है, उसके विपरीत ध्यान आकृष्ट करता है तथा सदाचार पर बल देता है, वह श्रद्धा के योग्य है। आचार्य श्री तुलसी तथा तेरापंथ समाज के मुनियों ने जो अणुव्रत-आन्दोलन का प्रचार आरम्भ किया है, वह श्लाघ्य है और सर्वव्यापी होने के योग्य भी।

धर्म के पांच विशिष्ट लक्षण हैं; अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इनमें से प्रत्येक जीवन की सार्थकता, महत्ता और कर्तव्यपरायणता के लिए

पर्याप्ति है और यदि कोई मनुष्य इन पांचों को अपने आचरण का द्योतक बनाले तो वह पूर्णरूपेण सभ्य और शिष्ट बन जाता है। महात्मा गांधी ने अपने जीवन में इन नियमों का पालन किया और जनता को इनका पालन करने के लिए बल दिया। पूर्व काल से आज तक सभी महापुरुषों, धर्म प्रवर्तकों और आचार्यों ने चाहे जिस देश या काल में हुए हों, इन नियमों को लोक-कल्याण-कारी माना है और इनका आचरण करने के लिए पूर्ण बल दिया है। आजकल के कलहात्मक, हिंसापूर्ण संसार में जहां अन्य-अधिकारापहरण और दूसरों का दमन करना, ये ही मुख्य उद्देश्य हो गये हैं; अहिंसा, सत्य, अस्तेय या अपरिग्रह का प्रचार करना और प्रत्येक व्यक्ति को इन नियमों के पालन के लिए प्रेरित करना एक महान् कार्य है। अणुव्रत इन नियमों के पालन का ही आन्दोलन है और इसके प्रवर्तक यह प्रयत्न करते हैं कि विशेष वर्गों के स्त्री-पुरुष इन महा-नियमों के आधीन अनेक उपनियमों का पालन करें, जिनसे उनका स्वयं आचरण बने और वे समाज विरोधी कार्यों के कर्ता न बनें।

अहिंसा सम्बन्धी उपनियमों में कतिपय ऐसे भी हैं, जिनसे कदाचित् कुछ लोग सहमत न हों या अनेक देशों में उनका पूर्ण पालन न हो सके। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि पूर्ण अहिंसक होने के लिए इन उपनियमों पर चलना नितान्त आवश्यक है। अहिंसा का पुजारी सत्य और अचौर्य को छोड़कर नहीं चल सकता, अहिंसक के लिए इन दो नियमों पर पूर्णतया दृढ़ होना जरूरी है। इसीलिए इस आन्दोलन ने इन दो नियमों पर भी विशेष बल दिया है। अचौर्य और अपरिग्रह सम्बन्धी उपनियम बहुत ही व्यापक हैं और एक वर्ग विशेष में नैतिकता लाने में विशेष सहायक होंगे। हमारा व्यापारी दल धन कमाने के लिए आजकल अनेक ऐसे उपायों का आश्रय लेता है, जो समाज के लिए घातक हैं। नित्यप्रति जनता इन समाजद्रोही व्यवसाइयों के हीन, समाज अहितकर और मनुष्य घातक उद्योगों का शिकार बनती जा रही है, परन्तु उनका यह व्यापार कम नहीं होता है। यदि अणुव्रत के द्वारा इस समुदाय में नैतिकता की धारणा उत्पन्न हो जाये और यह अपने घृणित आचरण से हट जाये तो देश और समाज का विशेष कल्याण हो सकेगा। इस दृष्टि से अणुव्रत-आन्दोलन के कार्य औ

उद्देश्य से सभी को सहमत होना चाहिए और इसकी सफलता के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

हमारा समाज उन्नत हो, उसमें नैतिक आचरण के प्रति श्रद्धा जागृत हो और वह आध्यात्मिक उन्नति की ओर आरूढ़ हो, यह हमारी अभिलाषा है। इसके लिए सर्वांगीण प्रयत्न करना होगा। अणुव्रत-आन्दोलन ने इसी दिशा में पथ-प्रदर्शन किया है। इसके सदुद्योग को पुष्ट करना होगा और ऐसी अनेक संस्थाएं बनानी होंगी, जो निःस्वार्थ और अपरिग्रह रूप से देश और समाज की सेवा कर सकें और पुनः जन-समुदाय में उच्चादर्शों के प्रति आस्था और श्रद्धा उत्पन्न कर सकें। अणुव्रत-आन्दोलन फले-फूले यह मेरी हार्दिक कामना है।

●

७

बाती से बाती जले

—श्री जैनेन्द्रकुमार

व्रत के बिना चलना ऐसी यात्रा है, जिसमें मानो दिशा नहीं है, न मंजिल है। इसको भटकना कह सकते हैं। स्वभाव से ही मनुष्य में नाना विकल्प उठते हैं। वह इधर भी चलना चाहता है, उधर भी चलना चाहता है। वह पाता है कि उसमें इच्छाएं अनेक हैं और वे परस्पर विरोधी तक हैं। ऐसी अवस्था में एक ही उसे सहारा है कि वह संकल्प प्राप्त करे। व्रत उस संकल्प का नाम है, जिसके हम कर्ता नहीं रह सकते। अपने संकल्प को तो हमी तोड़ भी सकते हैं। अक्सर होता है कि मन का बनाया संकल्प हमारे निकट एक विकल्प रह जाता है, अर्थात् संकल्प में बल होता है अहंता का और अहम् तो मायावी वस्तु है। यानी अपने संकल्पों को तोड़ने के बहाने उस अहम् में हम नये-नये संकल्प खड़े कर सकते हैं, किन्तु व्रत संकल्प से बढ़कर व्रत टूटता नहीं। वह विवेक की आवाज है; जिसको व्रत का शब्द देकर हमने अटल कर दिया है। ऐसा व्रत हमारे पास है तो साफ है कि संकट के समय हम बेसहारा नहीं रह जायेंगे। हवाएं आती हैं और हमें बहा ले जाती हैं। इच्छाओं के उद्वेग और आवेग हमें झकझोर डालना चाहते हैं। आंधी में आप ही सोचिये टूटा पत्ता क्या करे? वह तो इधर-उधर उड़ता ही रह सकता है, लक्ष्य साधन तो उससे हो नहीं सकता; पर आदमी के सामने तो लक्ष्य है। वह इधर-उधर भटके और भटकता ही रहे, तब तो उसकी मनुष्यता ही असिद्ध रहती है। लेकिन उसे बढ़ना है और बढ़ते चलना है। चलकर किसी ध्येय तक पहुंचना है तो वह भला कैसे सम्भव हो सकता है, जब तक कोई निश्चित संकेत उसके पास न हो। व्रत से उसे वही दिशा-संकेत मिलता है। उसके सहारे निष्ठा पैदा होती है और गति, भ्रमित गति न रहकर प्रगति बनती है।

अणुव्रत यानी व्रत का आरम्भ। यह कोई ऐसा आदर्श नहीं है, जिसे अव्यवहारी कह कर टाल दिया जाये। सारा व्यवहार इसके साथ टिक सकता है; बल्कि देखेंगे कि व्यवहार उससे पुष्ट बनता है। जीवन बन्द नहीं होता, प्रत्युत व्यवस्थित होता है। अन्तर विवेक वह अंकुश नहीं है, जो हमारी जीवन-चेतना को क्षत-विक्षत करता हो; वह तो उल्टे चैतन्य को स्वस्थ करता है। वह कभी प्राण वेग को कुण्ठित करने वाला नहीं बनता है, बल्कि वह उसे उर्जस्व करता है।

यहां चेतावनी जरूरी है। बहुत से मान लिये गये विधि-निषेध अक्सर जीवन के तेज को मूर्छित करते हुए देखे जाते हैं। पश्चिम की ओर से पूर्व पर, विशेषकर भारतवर्ष पर यह आक्षेप रहा है। पश्चिम की प्रगति पिछली दो शताब्दियों में आश्चर्यकारक रही है। कुछ विचारकों की राय में इसका कारण जीवन के प्रति उनका मुक्त भाव है। निषेधों के बन्धन से उसे जकड़ा नहीं गया है। इसलिए वह खुलकर उठ सकी और चारों ओर बढ़ सकी। उठते हुए पश्चिम के आगे पूर्व चकित और स्तब्ध रह गया है। पश्चिम के गति वेग के आगे उसे पराजित होना पड़ा है। इसलिए माना जाता है कि जीवन की वह पद्धति जहां नाना नियमों और निषेधों से उसे बान्धा जाता है, विकास को कुण्ठित करने वाली है और परिपूर्णता की ओर ले जाने वाली नहीं है। यह चेतावनी असंगत नहीं है और इसीलिए शुरू हमें व्रत के आरम्भ से करना है अर्थात् किसी अहंमन्यता में से व्रत के विचार को नहीं आना चाहिए। ऐसी हठवादिता तो जकड़ भी सकती है, लेकिन यदि मुक्त विवेक का निर्णय हो तो वह किसी प्रकार जीवन की हानि नहीं करेगा, प्रत्युत उत्कर्ष ही साधेगा। जीवन-चेतना का हमारे द्वारा व्यर्थ इधर-उधर अपव्यय हुआ करता है। वह बचाना जरूरी है। सोचिये कि किनारा यदि नदी का या नहर का न हो तो क्या हो? ऐसी नदी सागर तक नहीं पहुंच सकती, न विशेष उपयोगी रह सकती है। यह सही है कि नदी स्वयं अपना किनारा बनाती चलती है, व्रत जीवन-प्रवाह को इसी तरह किनारा देते चलते हैं और सूख कर नष्ट होने की सम्भावना से बचाये रखते हैं।

स्पष्ट ही आज दो प्रकार की जीवन पद्धतियां देखी जाती हैं। उनके नीचे दो तत्त्ववाद और दो दर्शन खड़े हो गये हैं। किन्तु प्रश्न तत्त्ववाद का नहीं, अपितु वह तो तात्कालिक है। प्रत्यक्ष व्यवहार का प्रश्न है कि इन परस्पर सम्बन्धों को क्या आधार दें? योगवाद का समर्थन तात्त्विक रूप से ही हो सकता है। भोग को नितान्त निषेध मानकर यहां चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। भोग सामने रखकर सीधे गति इधर चलने को ही नियम मान लिया जाये तो क्या समाज की कोई परिकल्पना सम्भव है? स्पष्ट है कि संयम के बिना भोग ही असिद्ध है। मनमानापन चलाने की असमर्थता से मानव-जीवन का आरम्भ है। पशु को ही इसकी छूट है। इसीलिए जहां वह रहता है, उसे जंगल कहते हैं। लेकिन मनुष्य को समाज में रहना पड़ता है। समाज यानी जहां परस्पर निर्वाह है, जहां आपसी आदान-प्रदान की कुछ राजनीति है।

प्रश्न उसी आपसीपन की आवश्यकता में से उत्पन्न होता है। नागरिकता और सामाजिकता पनप नहीं सकती, अगर आदमी मन को रोक-थाम न सके। यह रोक-थाम ऊपर कानून के बल से भी की जा सकती है, पर इसीसे वह पूरी सफल और सार्थक नहीं होती। सिपाही की वजह से ही चोर चोरी न कर पायेगा तो समाज में दो ही वर्ग रह जायेंगे। एक अपराध करने की सुविधा चाहने वालों का, दूसरा उस सुविधा को बलात् अपने हाथ में रखना चाहने वालों का। यह स्थिति मानव के और उसकी संस्कृति के लिए शोभाजनक नहीं है।

व्रत स्वेच्छा में से प्राप्त होता है, यानी उससे दो ओर से बचाव होता है। अपराध भाव से और दमन की आवश्यकता से। दमन द्वारा अपराध न होने की रीति-नीति अपराध वृत्ति को कभी काट नहीं पायेगी। सूक्ष्मता से देखें तो दमन से अपराध की जड़ें गहराई में और खिचती ही गई हैं। और उसकी बेल फैलती ही गई है। व्रत विचार उन जड़ों को काटने का ही उपाय है।

अणुव्रत का आन्दोलन के रूप में आचार्य तुलसीजी के नेतृत्व में प्रचार हो रहा है। वह एक नैतिक आन्दोलन है। जैसे बाती से बाती जलती है, नैतिक आन्दोलन में वैसे ही व्यक्ति से व्यक्ति में सुलग पैदा होनी चाहिए। मनुष्य का चरित्र मूल अधिष्ठान है, उस पर ही समाज-निर्माण या समाज-क्रान्ति खड़ी

होगी और उस आन्दोलन की सार्थकता यही नहीं है कि चोर-बाजारी न हो, रिश्वत न हो, बल्कि नैतिक आन्दोलन को यहां तक जाना है कि भीतर का यानी ईश्वरीय कानून व्यक्ति में और समाज में इतना जागृत और ज्वलन्त रहे कि ऊपर डण्डे और जेल के जोर से मनवाया जाने वाला कानून अनावश्यक हो जाये। जब युद्ध मात्र विश्व-मानस के लिए असहनीय हो जाये और अस्त्र-शस्त्र में विज्ञान का और धन का उपयोग कोरी मूर्खता दीखने लगे शासक जब स्वयं आत्म-शास्ता हो और प्रशासित अनुभव करने की आवश्यकता में कोई न रह जाये।

अणुव्रत-आन्दोलन को सर्वथा स्व-शासित अर्थात् आत्म-शासित समाज-व्यवस्था को उदय में लाने के लक्ष्य को सदा अपने समक्ष उपस्थित करके चलना है।

८

अणुव्रत : भाव-क्रान्ति का प्रतीक

—श्री हरिशंकर द्विवेदी

सम्पादक—नवभारत टाइम्स, बम्बई

अणुव्रत जैनधर्म के अनुसार गृहस्थ-धर्म का एक अंग है। जैनधर्म का मूल सिद्धान्त है—अहिंसा। अहिंसा को गृहस्थ-जीवन में प्रतिष्ठित करने के लिए जिन व्रतों की आवश्यकता है, वे अणुव्रत कहे जाते हैं। समय के साथ इन व्रतों में कोई मौलिक अन्तर नहीं आता। विवेकशील जैन आचार्य समय-समय पर जनता को बताते हैं कि वह अपनी समस्याओं के समाधानार्थ किस प्रकार इन व्रतों का पालन करे। जैनाचार्य श्री तुलसी अपने अनुयायियों को, जिनकी संख्या हमारे देश में नगण्य नहीं है, अणुव्रतों में पूरी निष्ठा रखने की सलाह देते हैं। सलाह तो अन्य जैनाचार्य भी देते हैं, किन्तु आचार्य श्री तुलसी ने अपने अणुव्रत-सम्बन्धी विचारों के प्रचार के लिए कर्मठ प्रचारकों का जो संगठन बना लिया है, वह उनकी मौलिक सूझ एवं विशिष्टता का द्योतक है। इस संगठन को देखकर ही लोग अणुव्रत-प्रचार को 'आन्दोलन' की कोटि में स्वीकार करते हैं। प्रचारकों में केवल जैन मुनि ही नहीं, कोट्यधीश गृहस्थ भी हैं। जो स्वयं अणुव्रती न हो, उनके प्रचार का प्रभाव पड़ नहीं सकता, अतः बहुत से धनी गृहस्थों को भी अणुव्रत-आन्दोलन के संगठन में स्थान पाने के लिए अपने आचरण को सुधारने की ओर एक सीमा तक त्याग करने की आवश्यकता हुई। समाज-हित की दृष्टि से आन्दोलन का व्यक्तिगत व्यवहार-शुद्धि से सम्बन्धित यह पहलू काफी महत्त्व का है। जो गृहस्थ अणुव्रत के प्रचारक बने हैं, उन सभी के सारे व्यवहार शुद्ध हो गये, इस प्रकार का कोई दावा करना यद्यपि सम्भव न हो, तो भी आन्दोलन का महत्त्व कम नहीं हो जाता। विचार और व्यवहार-शुद्धि के इस आन्दोलन के प्रति लोगों में थोड़ी भी निष्ठा पैदा हो जाना, एक उत्तम लक्षण है। मन की भूमि में एक बार यह भाव-रूपी बीज पड़ा तो बाद में वह बड़ा वृक्ष भी बन सकता है।

हिंसा हमारे हाथ, पांव, जीभ अथवा आंख की क्रियाओं में नहीं रहती। तलवार, बन्दूक और तोप में भी वह नहीं रहती। उसका निवास-स्थान मन में है। अणुव्रत-आन्दोलन का उद्देश्य गृहस्थों की मन-शुद्धि है। जिस मन में भोग से परहेज रखने की प्रवृत्ति छोटे रूप में भी जग जायेगी, उसमें धीरे-धीरे हिंसा के प्रवेश करने की आशंका भी कम होती जायेगी और जब भोग का स्थान त्याग ले लेगा, तब हिंसा का स्थान सम्पूर्ण अहिंसा ले लेगी। भोग और हिंसा का अटूट सम्बन्ध है। अणुव्रती भोग को मर्यादित रखने के लिए स्वयं तैयार होता है तथा दूसरों को भी तैयार करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार वह हिंसा को मर्यादित करने का प्रयास करता है। मानव-धर्म के प्रचार के लिए इससे उत्तम मार्ग हो ही क्या सकता है ?

अणुव्रत-आन्दोलन जैनधर्म के ही नहीं, संसार के सभी धर्मों के अनुकूल है। योगीराज श्रीकृष्ण ने अपने को वेदों में सामवेद माना है। सामवेद भाव-प्रधान है। यदि किसी के भीतर भाव-क्रान्ति हो जाये, तो उसे क्रान्ति के अनुपात में वास्तविक ज्ञान प्राप्त होकर रहता है। सामवेद का उद्देश्य ही भाव-क्रान्ति है। योगीराज श्रीकृष्ण भी भाव-क्रान्ति पर इतना बल देते हैं कि वे अपने आपको भाव-क्रान्ति उत्पन्न करने वाला सामवेद मानते हैं। अणुव्रत-आन्दोलन भी तो भाव-क्रान्ति पर ही अधिक बल देता है। भाव सचमुच बदले तो व्यवहार अपरिवर्तित रह नहीं सकते।

सच्चा जैन कौन है ? जैन वह है जो 'जिन' को माने। 'जिन' शब्द का अर्थ है—जय-शील। जीत किस पर ? राग-द्वेष आदि पर। 'जिन' में विश्वास करने का अर्थ ही है—राग-द्वेष के पराजित करने की वांछनीयता में विश्वास करना। हमारे राग-द्वेषों का कारण कामनाएं बताई गई हैं। गीता में दुःख-ताप का एक मात्र कारण काम को माना गया है। अणुव्रत-आन्दोलन मनुष्य की कामनाओं पर अंकुश रखने का आन्दोलन है। यही कारण है कि आचार्य श्री तुलसी द्वारा संस्थापित अणुव्रत-सम्बन्धी संगठन शैशवावस्था में होते हुए भी जिस किसी विचारशील व्यक्ति के सम्पर्क में आया, उसे ही अपनी ओर कुछ न कुछ आकृष्ट करने में समर्थ हो गया।

९

शासन-व्यवस्था और अणुव्रत

—श्री रामसेवक श्रीवास्तव
स० सम्पादक—नवभारत टाइम्स, बम्बई

आध्यात्मिक सुखानुभूति के लिए ही नहीं, भौतिक एवं आर्थिक उन्नति की कल्पना का आधार भी नैतिकता से परे नहीं माना जा सकता। रामराज्य का पर्याय यदि प्रजातन्त्र ही है तो हमें प्रजा के आचरण को ऊंचा उठाना ही होगा; अन्यथा प्रजा के लिए, प्रजा द्वारा प्रजा के शासन की परिभाषा ही बदलनी होगी। इससे शासन की सर्वोत्कृष्ट प्रगति का आधार ही नष्ट हो जायेगा।

विद्या के विकास से राजनैतिक चेतना उद्दीप्त करना सम्भव हो सकेगा, इसमें सन्देह नहीं, किन्तु संयम और साधना का पाठ पढ़ाये बिना अच्छे संस्कारों का बीजारोपण बालुका से तेल निकालने जैसा ही होगा। जब प्रजा ही ईमानदार न होगी तो प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा संचालित शासन कहां तक स्वच्छ एवं कलमष रहित रह सकेगा? अतः राजनैतिक चेतना जागृत करने के साथ-साथ आज भारत का नैतिक स्तर उठाना कहीं अधिक जरूरी है। रक्षक भक्षक न बनें, यह नैतिकता के विकास द्वारा ही सम्भव हो सकता है। इस ओर जो भी संस्था या धार्मिक सम्प्रदाय सार्वजनिक तथा सार्वभौमिक उद्देश्य लेकर अग्रसर होते हैं, उसके प्रभाव को राष्ट्रीयता का अंग ही माना जायेगा।

आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन ऐसा ही एक अभिनव प्रयास है, जो मानव की सुप्त आध्यात्मिक चेतना को जगाकर उसे जीवन के हर पहलू में सत्आचरण के सोपान की प्राप्ति कराता है। अणुव्रती की तीन श्रेणियां हैं—

(१) प्रवेशक अणुव्रती

(२) अणुव्रती

(३) विशिष्ट अणुव्रती

ये नितान्त स्वाभाविक और विकासोन्मुख जीवन की श्रेणियां ही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि जनता जब प्रवेशक अणुव्रती होगी, तो उसके प्रतिनिधि अणुव्रती और शासक विशिष्टाणुव्रती हो सकेंगे। प्रजातन्त्र का मूलोद्देश्य है भी ऐसे ही विशिष्ट शासकों के हाथ में शासन-यन्त्र सौंपना ताकि शासन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव हो। राम यदि विशिष्टाणुव्रती के समस्त गुणों से सम्पन्न न होते तो रामराज्य की कल्पना का आधार ही हमें कहां से मिलता ?

धर्म के मूलभूत सिद्धान्त समस्त मानव-समाज में समान ही हैं और यथार्थ तो यह है कि जिस धर्म या सम्प्रदाय में इन सिद्धान्तों का ह्रास होने लगता है या इनकी उपेक्षा की जाने लगती है; उसका अन्त भी अनिवार्य हो जाता है। अतः धर्म को स्थायित्व प्रदान करने के लिए उसके मूलाधार को ठोस बनाये रखना अत्यावश्यक ही नहीं, अपरिहार्य होगा।

अणुव्रत-आन्दोलन के द्वारा आचार्य श्री तुलसी ने जैनधर्म की विशिष्टता का उन्नयन तो किया है, मानव-धर्म की समानता को चरितार्थ करने के लिए अमूल्य प्रेरणा-स्रोत भी प्रस्तुत कर दिया है। अणुव्रती होने पर कोई भी धर्मावलम्बी अपने धर्म का पूर्ण ज्ञाता और पोषक बन सकता है, इसमें सन्देह नहीं। साथ ही वह अन्य धर्मों के वैशिष्ट्य को प्राप्त कर मानव-धर्म का प्रबल समर्थक भी बन सकता है और ऐसे व्यक्ति के हाथ में शासन-सूत्र का सौंपा जाना भला किसे प्रिय और सुखकर न होगा ?

मेरा दृढ़ विश्वास है कि अणुव्रत-आन्दोलन की सफलता राष्ट्रीय उत्थान की सबसे बड़ी सफलता होगी; क्योंकि राष्ट्र की समस्त बुराइयों और अभाव-अभियोगों का निराकरण इन व्रतों के धारण करने से सम्भव हो सकता है। वस्तुतः समस्त जन-समुदाय अणुव्रत के सिद्धान्तों को स्वीकार कर ले तो कम से कम इस देश के लिए पुलिस की आवश्यकता तो रहेगी ही नहीं और सेना की जरूरत यदि रही भी तो नगण्यवत्। काश ! वह दिन आये जब कि भारत अपनी प्राचीन परम्परा के दिव्य उदाहरण को अणुव्रत के रूप में पुनः प्राची के

आंगन में चमकाये और पश्चिम उस ज्योति को पाकर निहाल हो उठे। अणु-बमों का भय फिर जाता रहेगा और मानव को सृजनात्मक शक्ति और क्षमता का नया पाठ सीखने को मिलेगा। जैन-समुदाय का कठोर साधनामय जीवन यदि इस कार्य में औरों की अपेक्षा अधिक शीघ्रतापूर्वक सफलता प्राप्त करे तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।



१०

मानव जीवन की सार्थकता का एक अमोघ उपाय

—स्वामी श्री प्रेमपुरीजी

विशाल विश्व के प्रत्येक प्राणी का ध्येय है—दुःख-निवृत्ति एवं सुख-प्राप्ति। इस उद्देश्य की सिद्धि ही उनकी समस्त चेष्टाओं का केन्द्र बना हुआ है। इसकी पूर्ति के लिए ही उनकी शारीरिक, मानसिक, ऐन्द्रियिक आदि सारी प्रवृत्तियां होती हैं। विवेकी और विचारशील होने का अभिमान रखनेवाला मानव प्राणी तो अपने लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए अन्यों को लक्ष्य-भ्रष्ट करने पर उतारु रहता है, अपने क्षुल्लक दुःख को दूर करने के लिए दूसरों को अपार दुःख सागर में डुबोते हुए तनिक भी आगा-पीछा नहीं सोचता, अपने आपको सुखी बनाने के लिए अन्यों का सुख छीनने में तत्पर रहता है, न तो झूठ बोलने में झिझकता है और न चोरी करने में ही शरमाता है, दुःख-निवृत्ति एवं सुख-प्राप्ति के साधनों का अनुचित उपायों द्वारा संग्रह करने में तन, मन, धन, जन आदि की शक्ति का व्यय प्रचुर प्रमाण में करता रहता है; तथापि न तो दुःख दूर होता और न सुख समीप आता ही दीखता है। दुःख हटाये हटता नहीं, प्रत्युत बिना बुलाये ही दुःख और दुःख के साधन मान न मान चढ़ बैठते हैं और सुख तो हजार बुलाने पर, हजार प्रयत्न करने पर भी दूरातिदूर भागता फिरता है; कथंचित् प्राप्त होता भी है, तो उससे और भी अधिक सुख-भोग की लालसा को तीव्रतम रूप में उद्दीप्त कर एक पलकारे में प्रलीन हो जाता है। उस क्षणिक सुखाभास से तृप्ति होनी तो अलग रही, उलटी विषय-भोग की वासना तीव्र हो उठती है और असन्तोष की आग को प्रचण्डरूपेण भड़का देती है।

इस प्रकार अथाह, अथक, अविरल प्रयत्न करते-करते थक-पक लोथ-पोथ हो जाने पर भी, जब सफलता के दर्शन दुर्लभ ही नहीं, असम्भव मालूम देते हैं, तब कोई-कोई विचारशील व्यक्ति सन्देह करने लगते हैं कि 'सम्भव है उचित उपायों की जानकारी न होने के कारण इस सम्बन्ध में किये जाने वाले

मेरे प्रयत्न ही गलत हों; अतः अपने से ज्यादा जानकारी रखने वाले किसी सज्जन पुरुष की सम्मति लेनी चाहिए।' अपने सन्देह का समाधान चाहने वाली अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के लिए विज्ञानवान् सज्जन पुरुष की खोज में जब वह व्यक्ति अपने चारों ओर दृष्टि डालता है, तब उसे प्रायः सभी मनुष्य अपने समान ही त्रिताप से संतप्त, आशा-तृष्णा की आग में जलते-झुलसते, विषय-वासना से विह्वल, सुख की खोज में हड़खाये कुत्ते की भांति इधर-उधर मारे-मारे फिरते, अशान्ति के उपद्रवों के द्वारा उत्पीड़ित, काम-क्रोध आदि से क्रमशः दुःख सागर में निमग्न और अशान्त हृदय ही दीखते हैं। जो समर्थ व शान्त हृदय हैं, उन्हें देखकर उन्हें खूब आश्वासन मिलता है कि 'अवश्य यह सज्जन मेरी चिरकांक्षित दुःख-निवृत्ति एवं सुख-प्राप्ति से मुझे मिला देंगे; क्योंकि वे स्वयं उससे मिल चुके हैं।'

उपरोक्त जिज्ञासु व्यक्ति उन विज्ञानवान् सज्जन के समीप पहुंचकर प्रार्थना करता है—"भगवन् ! किन उपायों से आपने अपने त्रिविध दुःखों की एवं परम सुख की प्राप्ति कर रखी है ? क्या कोई और भी कर सकता है ? यदि हां, तो आप उन साधनों की मुझ पर अनुकम्पा कीजिये ?" उसके उत्तर में अणुव्रत का उपदेश देते हुए उन समझदार सज्जन ने कहा—"दुःख पाप का फल है, पाप के न रहने पर दुःख नहीं रह सकता और पाप होता है हिंसा, असत्य, अस्तेय, अब्रह्मचर्य तथा परिग्रह से। सप्रयोजन या निष्प्रयोजन किसी को भी सताना हिंसा है। अमुक बात के बारे में अपने मन का जो आशय हो, उसके विपरीत बोलना असत्य है। दूसरों की अनुपयोगी चीजों को भी उनकी प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा के बिना ही अपने उपयोग में लाना या लाने का संकल्प करना, स्तेय (चोरी) है। लोक तथा शास्त्र-मर्यादा के विरुद्ध विषय भोगना अब्रह्मचर्य है। भोग्य पदार्थों का नाजायज तरीकों से तथा जरूरत से ज्यादा बटोरना परिग्रह है। इन पांचों से या इनमें से किसी एक-दो से भी पाप पैदा होता रहता है।"

पाप पैदा होने ही न पावे, इसलिए हिंसा के विरुद्ध अहिंसा, असत्य के विरुद्ध सत्य, स्तेय के विरुद्ध अस्तेय, अब्रह्मचर्य के विरुद्ध ब्रह्मचर्य और परिग्रह के विरुद्ध अपरिग्रह व्रत का अनुष्ठान सावधानी के साथ करते रहना चाहिए।

अपने आराम के लिए भी अन्य के आराम में लेशमात्र भी विघ्न न होने पावे; इस बात का तथा अन्य को अपने तन, मन, धन से आराम पहुंचाने का शक्ति भर प्रयास करते रहना अहिंसा है। जैसा देखा, सुना, समझा है, वैसा ही बोलने की भरसक चेष्टा करते रहना सत्य है। जिनके पास आवश्यकता से अवशिष्ट भोग्य-सामग्री है, उसे भी वे राजी-खुशी से दें तो लेना, नहीं तो न लेना अस्तेय है। अन्य स्त्री या पुरुषों पर वासना भरी कुदृष्टि न करना ब्रह्मचर्य है। जीवन-निर्वाह के उपयोगी पदार्थों का अपनी आवश्यकता से अधिक और दूसरों की आवश्यकता का शोषण करके संग्रह न करना अपरिग्रह है। इन पाचों व्रतों का यथाशक्ति पालन ही अणुव्रत कहलाता है। इस अणुव्रत के अनुष्ठान से जन्म-जन्मान्तर का पाप निवृत्त हो जाता है और नया पैदा होने नहीं पाता।

उचित तो यह है कि महाव्रत का अनुष्ठान तन, मन, से करना चाहिए। सबके साथ—देश में, सब काल में, सब निमित्त से और सब अवस्था में अहिंसा आदि पांचों व्रतों का पालन करना महाव्रत माना गया है; परन्तु वर्तमान युग के लोगों के लिए यह शक्य नहीं, अतः अणुव्रत का आदेश है। अणुव्रत का पालन तो आबाल-वृद्ध सभी को भरसक करना ही चाहिए। अणुव्रती निष्पाप हो जाता है। पाप के पलायन कर जाने पर, पाप के फल दुःख की अत्यन्त निवृत्ति अपने आप हो जाती है। दुःख से दबा हुआ सुख, दुःख के दूर होते ही स्वतः स्फुटित हो उठता है, कहीं बाहर से बुलाना नहीं पड़ता; क्योंकि वह तो सभी के पास आत्म-स्वरूप से विद्यमान ही है। विद्यमान सुख भी पाप या दुःख से आवृत्त होने के कारण प्रतीत नहीं हो पाता था; पाप या दुःख के हटते ही अनावृत्त हुआ स्वयं प्रकाशित हो आता है। बस, इसी में मानव-जीवन की सार्थकता है, यही मानव-जीवन की सफलता का अमोघ उपाय है। सब कोई अणुव्रती बनें, अपने जीवन के प्रधान ध्येय को साधें और क्रमशः महाव्रती बनने का सौभाग्य प्राप्त करें। इस उत्तर का एकाग्रतापूर्वक आचरण करैने से उस जिज्ञासु व्यक्ति की जिज्ञासा शान्त हो गई।

अणुव्रती भवेत्सर्वः क्रमेण च महाव्रती

●

११
जीवन की रेखाएं

—श्री मिश्रीलाल गंगवाल
वित्तमन्त्री, मध्यप्रदेश

चित्र के लिए रेखाएं अपेक्षित हैं। बिना रेखा के चित्र नहीं बन सकता। चित्रकार कितना ही सिद्धहस्त क्यों न हो, बिना रेखा वह चित्र नहीं बना सकता, चाहे वह चित्रकार ईश्वर भी क्यों न हो ? इसी तरह जीवन-सुधार की शुरुआत से पूर्व उसका सुन्दर चित्र खींचना होगा, रेखाएं खींचनी होंगी। बिना रेखाओं के जीवन में ताकत नहीं आ सकती, वह शक्तिशाली नहीं होता, उसमें बुराइयों का सामना करने की शक्ति नहीं होती।

व्रत जीवन की रेखाएं हैं। यह आवश्यक है कि व्रतों की रेखाएं जीवन में बिछें और हम उन पर अपने जीवन की कलम को चलायें। आज का हिन्दुस्तान आज से दस वर्ष पूर्व के हिन्दुस्तान से भिन्न है। पहले यहां राजा राज्य करते थे, अंग्रेजों का शासन था। अब यहां जनता का राज्य है, अतः और अधिक जरूरी है कि हमारे देशवासियों के जीवन में व्रत आयें। वे बुराइयों से परहेज करें और विशुद्ध नागरिक जीवन का निर्माण करें। उनके जीवन में झूठ न हो, चोरी करने का इरादा न हो, संग्रह की वृत्ति न हो। उनके जीवन में अहिंसा हो, सेवा का व्रत हो।

अणुव्रत-आन्दोलन मेरी दृष्टि में आज की राष्ट्रीय आवश्यकता है। मुझे इससे मतलब नहीं कि आन्दोलन किस शास्त्र से सम्बन्ध रखता है। हमें यहां उसके अन्दर की कठोर वास्तविकता को देखना है। आज जीवन में व्रतों की रेखाएं नहीं हैं। इस तरह जीवन की कमजोरियों से ही तो संस्कृति का पतन होता है। यह उत्थान और पतन की परम्परा चली आ रही है। भारत में

जब-जब संस्कृति का उत्थान हुआ है, वह भोग के सहारे नहीं, त्याग की शक्ति से हुआ है। आज जीवन में त्याग बोना है, उसकी रेखाएं खींचनी हैं। बिना पुरुषार्थ, साधना और कठोर प्रतिज्ञा के जीवन में त्याग का उतरना सम्भव नहीं।

अगर वह इतना सरल होता तो आचार्यजी को इतना पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता और अणुव्रतियों की संख्या आज हजारों नहीं लाखों होती।

मैं अणुव्रत-आन्दोलन को व्यक्ति रूप से लेकर समष्टि रूप तक देखता हूं। मेरी यह निश्चित मान्यता है कि देश के सभी स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध इन्हें जीवन में उतारेंगे तो उत्थान का एक बहुत बड़ा काम होगा। लेकिन जो आन्दोलन की ओर उन्मुख नहीं हैं, जिसने साधना नहीं की, वह व्रतों पर कैसे बोलता है ? मेरे मन में व्रतों के प्रति श्रद्धा है, विश्वास है, साधना नहीं है फिर भी अच्छाई के प्रति श्रद्धा है। अच्छाई की ओर जाने की, देश को उस ओर ले जाने की तमन्ना है। अपनी अन्तर्वेदना को भाइयों के समक्ष रखना भी अपना फ़र्ज समझता हूँ और इसीलिए यहां आया भी हूँ।

बहुत से लोग कह देते हैं, व्रत और आचार ढोंग हैं। यह कहते उनके दिल में अन्तर्वेदना नहीं होती। वे स्वयं भले रास्ते पर चलते नहीं, अपनी बुरी प्रवृत्तियों को दबाते नहीं और आत्म-नियमन द्वारा जो सही मार्ग पर चलते हैं, उन्हें हीन समझते हैं। यह गलत है। किसी के प्रति अविश्वास करना अहिंसा नहीं। अहिंसा वह आचरण है, जिससे उसके पास-पड़ौस वाले निर्भय हो जायें। मेरे पड़ौसी को यह विश्वास हो जाये कि मैं चरित्र-सम्पन्न हूँ। मेरे द्वारा उसका किसी भी तरह का अनिष्ट होने वाला नहीं है। यही सबसे बड़ी अहिंसा है। हिन्दुस्तान आज यह घोषणा करता है कि वह युद्ध नहीं करेगा, मित्रवत् रहेगा, तो उससे युद्ध-भय से त्रस्त लोगों को राहत मिलती है। इसी तरह आज यदि रूस और अमेरिका घोषणा कर दें तो संसार को बड़ी शक्ति मिलेगी, अभय का वातावरण बनेगा। यह व्रतों की शक्ति है। इसे चाहे जो कहें, अगर व्रतों में अणु की शक्ति है तो वह बाहर नहीं, अन्तर-मार करेगा, अन्तर-शुद्धि करेगा। व्रत का काम अन्दर चलता है, बाहर नहीं। अणुव्रत मानव को समाज

सेवा के लिए इन्सान बनाकर बाहर निकालेगा, जो कठोर व्रती होंगे और भयंकर प्रलोभन से भी डिगनेवाले न होंगे।

हम गिर गये, हमारा पतन हो गया, यह कहते सुनता हूँ तो दुःख होता है। मैं यह मानने को बिलकुल तैयार नहीं कि हमारा इतना पतन हो गया है। हां, नैतिक धरातल कुछ कमजोर अवश्य हो गया है। आज हममें बुराई का सामना करने के लिए एक सिपाही की-सी शक्ति नहीं है। आचार्य श्री तुलसी ने ऐसे समय में अणुव्रतों की मौलिक विचारधारा रखी है।

मेरी दृष्टि में वही सच्चा साधक, ज्ञानी, सन्त और महात्मा है, जिसका विवेक अन्तरंग की यथार्थता को पकड़ता है। मेरी यह निश्चित मान्यता है कि बिना इन व्रतों को अपनाये देशवासियों के प्रति करुणा पैदा नहीं हो सकती। आप अपनी इच्छाओं को भी बढ़ायें और करुणा भी पैदा करें, यह दोनों एक साथ सम्भव नहीं है। करुणा हृदय से पैदा होगी, सिर्फ कहने से नहीं।

आचार्य श्री तुलसी के दर्शन और अणुव्रती बन्धुओं के मिलने की उत्कण्ठा ने मुझे यहां ला खड़ा किया है। मैं आशा रखता हूँ कि आप अणुव्रतों को विचारों तक ही सीमित नहीं रखेंगे; उन्हें आचार तक ले जायेंगे। अगर व्रतों की एक-एक बात जीवन में उतर गई तो निश्चित समझिये, इन हजारों दीपकों के प्रकाश से हमारा देश त्यागियों का, महर्षियों का, उच्च नागरिकों का देश बनेगा और एक बार फिर वह आत्म-लौ से जगमगा उठेगा। मैं समझता हूँ कि अणुव्रत-आन्दोलन से हमें बड़ा व्यापक लाभ मिलेगा। अणुव्रत-आन्दोलन हमें सन्मार्ग पर ले जाता है, इन्सानियत की राह दिखाता है और हमारे मुल्क की तरक्की में उसका महान् योग है।

●

१२
अर्जुन का प्रश्न और अणुव्रतवाद

—श्री ज्ञानचन्द्र
सम्पादक—नवनीत

गीता में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से एक प्रश्न पूछा है—

"स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव !
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम् ?"

हे केशव ! समाधि में स्थित स्थिर बुद्धि वाले पुरुष का लक्षण क्या है ? स्थिर बुद्धि वाले पुरुष कैसे वचन बोलता है ? कैसे बैठता है ? कैसे चलता है ?

ऐसे उठना, बैठना, चलना, घूमना मनुष्य की बहुत साधारण क्रियाएं हैं, जिनकी ओर किसी का ध्यान जल्दी नहीं जाता, पर इन सहज क्रियाओं में भी जिसे मनुष्य बिना ध्यान दिये आचरित करता है, वस्तुतः मनुष्य के अप्रकट मन का व्यक्तित्व प्रतिक्षण निखरा करता है। मनुष्य चाहे किसी भी स्थिति को क्यों न पहुंच जाये, उसके उस पद से दैनिक जीवन की इन छोटी-छोटी बातों की महत्ता में कोई कमी नहीं आती है।

इसीलिए श्रीकृष्ण के मुख से योगी, स्थितप्रज्ञ, समाधिस्थ आदि के महात्म्य को सुनकर अर्जुन ने उनसे पूछा कि आर्यवर ! यह बताइये कि स्थितबुद्धि वाले व्यक्ति का साधारण आचरण कैसा होता है ?

मैं ऐसा नहीं मानता कि गीता में जिसके लिए योगी, स्थित-बुद्धि, समाधिस्थ आदि की संज्ञाएं कृष्ण ने प्रयुक्त की हैं, वह कोई अलौकिक व्यक्ति होता है, बल्कि मैं समझता हूँ कि कृष्ण का योगी अथवा स्थितप्रज्ञ कृष्ण की कल्पना का आदर्श-पुरुष है, जो न तो समाज के प्रति पलायनवादी होने का समर्थक होता है और न समाज की ऊंची-नीची, मीठी-कड़वी परिस्थितियों के प्रति अकर्मण्य रहकर अधीन की पिनक में अपने अन्तः के सुख के अनुभव करने का

समर्थक होता है। उनकी कल्पना का आदर्श पुरुष गृहस्थ-जीवन में गृहस्थ रह कर, रण में अस्त्र-शस्त्र उठाकर, उल्लास के क्षणों में उल्लसित होकर भी समाधिस्थ कहे जाने का अधिकारी है। उनके ज्ञान, उनके कर्म और उनकी भक्ति की योगत्रयी की इन शाखाओं को मैं स्वतन्त्र सत्ता नहीं मानता, बल्कि मैं उनको एक दूसरे का अन्योन्याश्रयी मानता हूं।

अपने इस विश्वास के कारण मैं इस प्रश्न का वह उत्तर भी दे देना चाहूंगा, जिसे श्रीकृष्ण ने दिया है। श्रीकृष्ण ने उसके उत्तर में कहा है—

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ ! मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञ स्तदोच्यते॥
दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभय क्रोधः स्थितधी र्मुनि रुच्यते॥
यः सर्वत्रानभिस्नेह स्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्य स्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥
यततो ह्यपि कौन्तेय ! पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥
तानि सर्वाणि संयम्य युक्तआसीत मत्परः।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥
ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्ग स्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥
रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

अर्जुन ! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को त्याग देता है, उस काल में आत्मा से ही आत्मा में संतुष्ट हुआ, स्थिर बुद्धिवाला कहा जाता है।

तथा दुःखों की प्राप्ति में उद्वेग रहित है मन जिसका और सुखों की प्राप्ति में जिसकी स्पृहा दूर हो गई है तथा जिसके राग, भय, क्रोध आदि नष्ट हो गये हों, ऐसे मुनि को स्थिर बुद्धि कहते हैं।

जो पुरुष सर्वत्र स्नेह-रहित हुआ होता है तथा शुभ और अशुभ वातावरण में न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर बुद्धि है।

जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही पुरुष जब सब ओर से अपनी इन्द्रियों को विषयों से समेट लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

इन्द्रियों द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय निवृत्त हो पाते हैं, परन्तु उसका राग निवृत्त नहीं हो पाता। स्थिर बुद्धि पुरुष वह है, जो राग से भी मुक्त हो गया हो।

हे अर्जुन ! यत्न करते बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियां बलात्कार से हर लेती हैं।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहित चित्त हुआ मेरे शरण स्थित हो, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियां वश में होती हैं, उसकी ही बुद्धि स्थिर होती है।

हे अर्जुन ! मन सहित इन्द्रियों को वश में करके मत्पर न होने के कारण मन के द्वारा विषयों का चिन्तन होता है और विषयों का चिन्तन करने वाले पुरुष की उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से उन विषयों की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरण-शक्ति भ्रमित होती है, स्मृति के भ्रमित हो जाने से ज्ञान-शक्ति का नाश होता है और बुद्धि नष्ट होने से मनुष्य अपने श्रेय साधन से गिर जाता है।

परन्तु स्वाधीन अन्तःकरण वाला पुरुष राग-द्वेष रहित अपने वश में की हुई इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ अन्तःकरण की प्रसन्नता को प्राप्त

होता है।

गीता में अर्जुन के प्रश्न के उत्तर की शैली अवश्य पुरानी कही जा सकती है, पर अर्जुन का प्रश्न आज भी सभ्य संसार के लिए पूर्ववत् अपने स्थान पर बना है कि मानव को कैसे उठना, बैठना चाहिए जिससे कि उसकी इन प्रक्रियाओं से देश, राष्ट्र अथवा मानव-जाति की प्रतिष्ठा पर धब्बा न आये।

मेरा ऐसा विचार है कि आचार्य तुलसी द्वारा संचालित अणुव्रत इस प्रश्न का उत्तर है। आज के युग में वस्तुतः समाज का एक ऐसा विकराल रूप व्यक्ति पर छा गया है और व्यष्टि की ऐसी अवहेलना दृष्टिगोचर हो रही है जैसे कि व्यष्टि मर ही जायेगी। पर व्यष्टि केवल इसलिए नहीं मरने वाली है कि समष्टि का आधार वही है। व्यक्ति के न रहने से समाज नहीं रहेगा। अतः हम सामाजिक जीवन के प्रति कितने भी जागरूक क्यों न हों, जब व्यक्ति का आचरण कलंकित रहेगा तो समाज कभी निष्कलंक हो ही नहीं सकता।

आचार्य तुलसी का आन्दोलन समाज के नारे न बुलन्द करके, समाज की इकाई के शोधन में लगा है। कहना चाहिए समाज के पुनरुद्धार का यही एकमात्र सही मार्ग है।

इस युग में जबकि सारा जगत् परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य और हिंसा में जला जा रहा है, समाज के हर सदस्य के लिए आवश्यक है कि वह अपना कर्त्तव्य, अपना धर्म और अपना कर्म-पथ पहचाने और मानव-जाति को जीवित रखने के लिए कोई ऐसा काम न करे, जिससे इस द्वेषाग्नि में आहुति पड़े। इसके लिए निश्चय ही क्रोध, द्वेष, राग आदि को नमस्कार करना होगा और बहुत सहिष्णुता से दूसरे के विचारों को समझकर 'तह' देखना सीखना होगा, उसका अभ्यास करना होगा और उसे कार्यरूप में परिणत करना होगा।

१ चीन की एक कथा है कि एक राजमन्त्री का परिवार बहुत बड़ा था और उसके परिवार के सभी व्यक्ति बड़े प्रेमपूर्वक रहते थे। जब वह राजमंत्री अति बूढ़ा हो गया और उसकी मृत्यु के दिन निकट आये तो एक दिन राजा ने पूछा—'आखिर इतने बड़े परिवार में इतना सौहार्द तुमने कैसे बनाये रखा?' शरीर अति जर्जर होने के कारण राजमन्त्री कुछ बोल न सका। उसने कागज पर

एक शब्द लिख दिया—'सहिष्णुता'।

पर-पक्ष के विचारों को समझने की चेष्टा करना और उसे किसी प्रकार ठेस न पहुंचने पाये इसकी चेष्टा करना, वस्तुतः दो ऐसे गुण हैं कि यदि कहीं अभ्यास हो जाये तो फिर मनुष्य देवता हो जाये। कुरान शरीफ में एक जगह परमात्मा की उक्ति आई है—'यदि मैं चाहता कि सब एक ही मतावलम्बी हों तो मैं दूसरे मत पैदा ही न करता।' इस नाना-रूपिणी, नाना-विचारधारिणी दुनिया का दुनियापन ही नानात्व में है और इस नानात्व में अधिक से अधिक समन्वय ढूंढ़ कर अपने को उस 'चूल' में बैठा लेना ही मानव-बुद्धि अथवा मानव-धर्म का सबसे बड़ा गुण है।

वह गुण अभ्यास से ही सम्भव है, अभ्यास-संकल्प से ही सम्भव है, संकल्प विचार से ही सम्भव है और आचार्य तुलसी विचार और संकल्प तक अंगुली पकड़ कर व्यक्ति को समाज के विशाल प्रांगण तक पहुंचाने का जो प्रयास कर रहे हैं, उसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये थोड़ी है। नरसी भक्त का "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड़ पराई जाणै रे" पीड़ पराई जानना ही वस्तुतः जैन और बौद्धों की अहिंसा है और वस्तुतः वही गुण सनातन-वैदिक धार्मिकों के धर्म का मेरुदण्ड है।

वही नेहरुजी का पंचशील है, जिस पर भारत की परराष्ट्र नीति आधारित है और वही गांधीजी का जीवन-दर्शन था, जिसे आज हम गांधीवाद कहते हैं।

आचार्य तुलसी के अणुव्रत को मैं व्यक्ति के समाज के प्रति व्यवहार का व्याकरण मानता हूं। हाड़-चाम के इस नराधम शरीर के लिए नहीं कहा जा सकता कि क्या बन पड़ेगा और क्या नहीं, पर चेष्टा स्वयं ऐसी ही है कि यदि कुछ समझ में आ जाये और व्यवहार हो जाये तो मानव-चोले का उद्धार हो जाये। 'बिन गुरु होय न ज्ञान,' आचार्य तुलसी आचार्य हैं—गुरु हैं। भगवान् करे उनके आशीर्वाद और पथ-प्रदर्शन से यह नराधम भी दो ही चार कदम सही मार्ग पर चलने में समर्थ हो जाये।

१३

आन्दोलन की आवश्यकता

—श्री गोपीनाथ अमन

अध्यक्ष—जन सम्पर्क समिति, दिल्ली

अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता क्या है, यह प्रश्न अक्सर पूछा जाता है। जिन कुरीतियों और दुर्व्यवहार को दूर करने के लिए अणुव्रत-आन्दोलन चलाया गया, उनसे तो कोई इन्कार नहीं करता, परन्तु कभी-कभी यह कहा जाता है कि और भी संस्थाएं तो काम कर रही हैं, इस संस्था के अलग चलाने की क्या आवश्यकता है ? इससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि देश में बहुत-सी अच्छी-अच्छी संस्थाएं चल रही हैं और उनका प्रभाव भी है। इसलिए यह प्रश्न गम्भीर हो जाता है कि अणुव्रत-आन्दोलन अपना काम अलग क्यों चलाये ? इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले इस आन्दोलन की रूपरेखा बता देना बहुत आवश्यक है। यह आन्दोलन राजनैतिक नहीं, बल्कि नैतिक है और इसे नैतिक कहते समय भी एक बात पर ध्यान रखना चाहिए कि इसकी वृत्ति अन्तरंगमुखी है। आत्म-सुधार के द्वारा जगत्-सुधार इसका लक्ष्य है। अणुव्रती के लिए आत्म-चिन्तन और आत्म-निरीक्षण अति आवश्यक है। इसलिए राजनैतिक संस्थाओं में और इसमें तो मुख्य भेद यह है कि राजनैतिक संस्थाएं बहिरंग-मुखी होती हैं। शक्ति का बढ़ाना, तादाद का बढ़ाना है और अपने प्रभुत्व को बढ़ाना उनका मुख्य लक्ष्य होता है। इसीलिए राजनैतिक पार्टियां पक्षपात बहुत करती हैं। अपना बुरा आदमी हो तो भी उसका साथ दो, दूसरे पक्ष का मनुष्य चाहे अच्छा भी हो, परन्तु उसे बुरा कहो। यह सब राजनैतिक पार्टियां करती हैं, बल्कि उनको करना पड़ता है।

अब उन पार्टियों को लें जो राजनैतिक नहीं, धार्मिक हैं। सब अपने-अपने धर्म को श्रेष्ठ बताते हैं और धर्म जब सम्प्रदाय का रूप धारण कर लेता है,

तो इसमें भी पक्षपात शुरू हो जाता है। इसलिए उन संस्थाओं और अणुव्रत-आन्दोलन में भी एक मौलिक भेद है। अब मैं देश की उस संस्था को लेता हूं जिसमें महात्मा गांधी के सबसे अधिक और सबसे बड़े अनुयायी पाये जाते हैं, यानी भूदान की संस्था जिसकी बागडोर आचार्य विनोवा भावे जैसे तपस्वी के हाथ में है। इस समय इस संस्था का अधिकतर जोर दान पर है। भूदान, सम्पत्तिदान, श्रमदान और ग्रामदान इत्यादि सब शानदार चीजें हैं, परन्तु अणुव्रत में दान पर नहीं, बल्कि त्याग पर जोर दिया जाता है। यह एक बारीक-सा भेद है, फिर भी भेद है जरूर। हमारे देश में एक संस्था भारत सेवक समाज भी है। इसका काम रचनात्मक है, परन्तु बहिरंगमुखी है। इन सब संस्थाओं के कार्यक्रम और लक्ष्य पर विचार करने के बाद अणुव्रत-आन्दोलन की आवश्यकता प्रतीत होती है।

यों तो राज्य-व्यवस्था भी नैतिकता रखने के लिए ही है, परन्तु कानून के जरिये जो नैतिकता कायम होती है, उसकी जड़ें बहुत मजबूत नहीं होतीं। हर शासन समाज की कमजोरियों पर स्थापित होता है। आदर्श समाज तो शासनहीन ही हो सकता है, परन्तु यह विषय और है। मुझे तो कहना यह है कि जिस समाज को शासन की आवश्यकता न हो, वह आदर्श समाज ही हो सकता है और आदर्श समाज का आधार आदर्श व्यक्ति की कल्पना पर आधारित है। इस हिसाब से अणुव्रत-आन्दोलन और सर्वोदय समाज का मूल आधार एक ही है।

मुझे दुःख है कि इस आन्दोलन का विरोध करने वाले भी मौजूद हैं और उन्होंने बहुत तीव्र शब्दों में आलोचना की है। कोई अणुव्रती आदर्श से गिर जाये, यह तो हो सकता है, परन्तु इससे अणुव्रत-आन्दोलन पर क्या दोषारोपण हो सकता है? जैन समाज के सब व्यक्ति त्याग-भावना नहीं रखते, इसमें जैन सिद्धान्तों का क्या दोष? हिन्दू अगर आलस्यमय जीवन बितायें तो इसमें गीता का क्या कसूर? मुसलमान समानता के सिद्धान्तों से गिर जायें तो इस्लाम का क्याह गुना? बड़े-बड़े राजनैतिक दल जिस आधार पर कायम हैं, उनके मानने वाले सबके सब उन आदर्शों पर कहां चल पाते हैं? सिद्धान्त रूप से अणुव्रत-आन्दोलन एक अहिंसात्मक क्रान्ति का द्योतक है। अगर कोई इसकी सब

प्रतिज्ञाएं न ले सके तो थोड़ी प्रतिज्ञाएं भी ली जा सकती हैं। विद्यार्थियों के लिए इतना बहुत है कि वह यह पांच प्रतिज्ञाएं लें कि शराब न पियेंगे, अपने विवाह में करारदाद न होने देंगे, हिंसात्मक काम न करेंगे और नकल न करेंगे। व्यापारी रिश्वत न देने और ईमानदारी से सौदा करने, पूरे नापतोल और असली माल देने की प्रतिज्ञाएं लें। सरकारी कर्मचारी रिश्वत न लेने और बुद्धिपूर्वक काम करने की प्रतिज्ञा कर लें और मजदूर अपने हितों के लिए प्रयत्न करते हुए भी पूरी मेहनत करने का प्रण कर लें तो हमारा देश बहुत ऊंचा उठ सकता है।

●

१४

व्यक्ति का गुण-विकास और सामाजिक उन्नति

—डा० रविशंकर शर्मा

"शुद्ध चित्त और शुद्ध जीवन वालों को परमेश्वर अपना हाथ देकर उठाता है। आत्मा का समाधान शब्दों से नहीं होता[1]।" प्रायः कहा जाता है कि यह प्रचार का युग है। प्रकाशन, सम्भाषण, विज्ञप्ति आदि उसके अनिवार्य अंग हैं। जितनी पुस्तकें, पत्रिकाएं आज प्रकाशित होती हैं, उतनी शायद कभी नहीं होती थीं। लेकिन यह कहना कि उससे मनुष्य का जीवन शुद्ध बना है, उसको अधिक ज्ञान हासिल हुआ है, उसकी बुद्धि अधिक मेधावी बनी है, मानसिक गुणों का अधिक विकास हुआ है—आत्मवंचना करना ही होगा। इतना असंयत, स्वार्थी, क्रूर, अस्थिर, चंचल, भययुक्त मानव कभी था, यह कह नहीं सकते। भाषा में, ऊपर के वेश में जरूर वह 'सभ्य' जैसा दीखता है। जानकारी-संग्रह का नाम विद्वत्ता नहीं है। तार्किक कुशलता अलग बात है और शिक्षित होना अलग। तो क्या भाषा, साहित्य का उपयोग ही छोड़ दिया जाये? तब तो बिलकुल पशुवत् स्थिति में मानव-समाज चला जायेगा। वैसा प्रस्ताव नहीं है। पशुओं की भाषा नहीं होती। हमारे पास भाषा है। लेकिन उसका उद्देश्य क्या होना चाहिए, यह स्पष्ट सामने रखना है। 'बिना शब्दों के सिखाना और बिना कुछ किये दूसरों के उपयोग में आना, सबको नहीं सधता[2]।'

---

1. Many words do not satisfy the soul, but a good life comforteth the mind and pure conscience giveth great assenance in the sight of God.

2. To teach without words and to be useful without action, few among men are capable of this.

इस विज्ञान के युग ने हिंसक, विनाशकारी अस्त्रों का निर्माण किया है। उसकी प्रक्रिया वृहत् से वृहत्तर, वृहत्तम की ओर रहती है। छोटी हिंसा से काम नहीं हुआ तो बड़ी हिंसा का सहारा लिया जाता है। अहिंसा का भी एक विज्ञान है। उसमें भी खोजें होती रही हैं। उसके भी प्रयोग हुए हैं। उन सबकी छानबीन करना आज मानवता-प्रेमियों का परम पुनीत एवं आवश्यक कर्तव्य है। भूदान-यज्ञ उसीका एक प्रयोग है। उससे अहिंसा का शास्त्र बन रहा है। जिस विचार की बुनियाद पर वह खड़ा है, वह एक सत्य विचार है। हर मनुष्य में एक ही आत्मा है और वह अभिन्न है। सारा मानव-समाज एक है और हम सबका जीवन भी अभिन्न है। उसमें जाति के, धर्म के, कर्म के व धन के भेद खड़े करना गलत है।

विचार का उद्गम हमारा मस्तिष्क होता है। उसकी अनुभूति का स्थल हमारा हृदय है। विचार की छानबीन की कसौटी सत्य ही होना चाहिए और उसकी प्राप्ति अर्थात् जीवन में अनुभूति हृदयपूर्वक होनी चाहिए। प्रेम ही किसी सत्य को जीवन में लाने का माध्यम हो सकता है। मनुष्य की यह दोनों शक्तियां मस्तिष्क और हृदय, सिक्के के दो पहलू की तरह एक ही हैं। तीसरी शक्ति इन्द्रियों की होती है। शरीर का उपयोग भी शक्ति का साधन बनता है। ये तीनों शक्तियां मेरी हैं, जहां इसका मान है और स्वीकार्य है; वहां जो शक्ति उत्पन्न होती है, उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। आत्मत्व का विश्लेषण करना हमारी बुद्धि के परे की बात है, लेकिन उसकी साक्षी का अभ्यास और अनुभव बहुतों ने किया है। हर मनुष्य के अन्दर बुराई के वक्त टोकने वाला और अच्छाई के वक्त आनन्द, आश्वासन अथवा शाबाशी देने वाला कोई बैठा है, यह कौन नहीं कहेगा? इस यज्ञ के निमित्त मनुष्यों की इन चारों शक्तियों का प्रदर्शन हो रहा है। भौतिक तत्त्वों को भी नैतिक और आत्मिक मूल्यों पर ले जाना, अहिंसा की खास खूबी होती है। हमारे आज के जीवन में जो दरारें पड़ी हैं—गरीब-अमीर, शासक-शासित, शोषक-शोषित, बुद्धिजीवी-श्रमजीवी इत्यादि; वे गलत हैं, अनात्मिक हैं, अनैतिक हैं। हिंसा की ओर ले जाने वाली हैं। मनुष्य को अधिक स्वार्थी, क्रूर, पापी, प्रमादी तथा रुग्ण बनाने वाली हैं।

इनमें किसी को भी शान्ति, समाधान, सुख नहीं मिल सकता। व्यर्थ ही मानवीय-शक्ति का दुरुपयोग और ह्रास होता जायेगा। उसके सच्चे स्वरूप का दर्शन और उसके अपूर्व गुणों की शक्ति का लोप ही होता चला जायेगा। बाहर से आज जो दुर्व्यवस्था, हिंसा, अन्याय, अत्याचार, शोषण दीखता है, उसका उपाय निकाले बिना मनुष्य और समाज सुखी नहीं हो सकते।

परिस्थितियों का परिणाम मनुष्य पर पड़ता है। अनुकूल परिस्थितियों में वह विकास कर सकता है, प्रतिकूलता में उसके विकास में बाधाएं आती हैं। आज यह बात तो बहुतों के ध्यान में आती है कि मनुष्य नहीं बिगड़ा है, परिस्थितियां बिगड़ी हैं। इसलिए परिस्थितियों को बदलने की हर कोशिश पर जोर दिया जाता है। हमारा भी विश्वास मनुष्य के अच्छेपन में है। लेकिन हम यह कबूल नहीं करते कि मनुष्य में केवल अच्छाइयां ही हैं। बुरे भाव भी हमारे में रहते हैं। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य की अच्छाइयों को प्रकट किया जाये। उनका उपयोग हो और उसके अनुकूल परिस्थिति बने। अब यह हो कैसे? जाहिर है दोहरी प्रक्रिया से होगा। मनुष्य को भी उसकी बुराइयों से झगड़ने का बल देना होगा और समाज में भी अनुकूलता लानी होगी। विचार-परिवर्तन, हृदय-परिवर्तन, समाज-परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन इस तरह इसका क्रम है।

भारत में अनेक महापुरुषों ने सत्य की खोज में, अहिंसा की उपासना में अपने जीवन समर्पित किये। सारे समाज को उनके उन प्रयोगों ने अनुप्राणित किया। यदि आज भी कोई महापुरुष इन तत्त्वों का सहारा लेकर कदम बढ़ाता हुआ आगे चला जा रहा है तो कौन-सी नवीन बात है? नवीनता कार्यक्रमों में होती है। समाज के सामने जो आदर्श उपस्थित होते हैं, उनको प्राप्त करने के लिए आप जो कार्यक्रम देते हैं, उसीमें आपकी कसौटी होती है। भूदान-यज्ञ वैसा ही एक कार्यक्रम है, जिसमें मानवताप्रिय सत्य के उपासकों और अहिंसा के पुजारियों की कसौटी होगी। हमारा खरा-खोटापन इसी पर कसकर प्रकट होने वाला है। हमारे विश्वास की गहराई को नापने का मापक ही यह भूदान बनने वाला है।

मनुष्य में कुछ गुण जन्मजात होते हैं और कुछ वह कमाता (Acquire) है। उसका भी कोई नियम नहीं हो सकता। अपना-अपना परीक्षण करके सबको तय करना होता है। मिसाल के तौर पर गांधीजी में अहिंसा जन्मजात थी। यानी उनके जीवन व स्वभाव में वह सहजता से एकरूप हो गई थी। ब्रह्मचर्य के लिए उन्होंने कठिन परिश्रम किया था, वह उनकी कमाई हुई निधि थी। इस तरह अपने-अपने अन्तःकरण को टटोलना होता है, गुण-विकास के लिए। गुण आत्मा के और दुर्गुण शरीर के ऐसे भी भेद किये जाते हैं। इस पर से इतना स्पष्ट है कि गुण-विकास बिना आत्म-दर्शन असम्भव है। आत्म-दर्शन के सामने कोई दुर्गुण नहीं टिकता। अणुव्रत को भी मैं उसी यात्रा का एक साधन, एक रास्ता मानता हूं। संकल्प तो मनुष्य को बड़े ही करने चाहिएं। उनको हासिल करने के लिए अपनी-अपनी सुविधा, सामर्थ्य और वृत्ति के अनुसार उपाय अख्तियार करने पड़ते हैं। उद्दिष्ट संकल्प और उनको हासिल करने के उपायों में विरोध न हुआ तो एक दिन वे प्राप्त भी हो सकेंगे। कभी-कभी वैसा भी भास हो सकता है कि एक मनुष्य जो सत्य समझता है, दूसरे के लिए वह असत्य समझा जाये। जो हमारे लिए असत्य हो, वह दूसरों के लिए सत्य हो। लेकिन मेरे लिए क्या सत्य है, यह मैं जान सकता हूं। दूसरों के कारण भूल हो सकती है, लेकिन उसमें यदि धैर्य, ईमानदारी और निष्ठा के साथ बढ़ना होता गया तो भ्रम नहीं होगा।

अणुव्रत में उद्देश्य छोटा नहीं है, भले ही उसको हासिल करने के उपाय छोटे-छोटे हों। अक्सर मनुष्य-स्वभाव में कुछ बातों के लिए अधिक महत्त्व होता है और कुछ के लिए कम या नगण्य। सिद्ध लोगों की बात हम नहीं करते, लेकिन जो साधक हैं, उनको तो छोटी से छोटी प्रवृत्ति व संस्कार की ओर बड़ी सावधानी से देखना होगा, उसके सुधार की कोशिश करनी होगी। हम लोगों के रोज़ के जीवन में न मालूम कितने व्यर्थ के संस्कार हमारी, हमारे घर वालों की एवं साथियों की असावधानी के कारण पनपते रहते हैं। उन पर रोक लगाने का प्रारम्भ होना चाहिए। चीनी दार्शनिक ने ठीक ही लिखा है—"चरित्रवान् पुरुष का जीवन सरल होता है, फिर भी अनाकर्षक नहीं होता।

वह सादा होता है, फिर भी उसमें एक शान होती है। वह स्पष्ट होता है, फिर भी उसमें सन्तुलन होता है। वह जानता है कि महान् कार्यों की सिद्धि का रहस्य छोटे कामों को अच्छी तरह करने में होता है।[1]"

भारतवर्ष में अनेक महर्षियों ने अपने ढंग से आत्मोन्नति के लिए साधनाएं की हैं। प्राचीन काल में वह एक परम्परा ही दीखती है—ऋषि, मुनियों की। ऊंचे से ऊंचा अध्यात्म-दर्शन उनके चिंतन में से प्रकट हुआ, शास्त्र और उपनिषद् निकले। जिनका बहुत गहरा असर आज इस देश के रहने वालों पर है। दूसरा बड़ा असर उन समाज-नेताओं का हम पर है, जिन्होंने समाज की व्यवस्था, समाज की रचना, उसमें पाये जाने वाले अनुकूल-प्रतिकूल विभिन्न तत्त्व, मनोवैज्ञानिक तत्त्व आदि का चिन्तन किया; जिसकी मिसाल अनेक वादों के रूप में आज हमारे सामने है। दुनिया का कोई हिस्सा इनके असर से अछूता नहीं है। पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, जनतन्त्र आदि के प्रयोग आज सर्वत्र हो रहे हैं। हमारे देश में भी उनका असर है। पाश्चात्य सभ्यता के साथ वह आया। सौभाग्यवश इस देश में एक ऐसा पुरुष पैदा हुआ, जिसमें इन दोनों का अद्‌भुत समन्वय सधा। गांधीजी की देश को यदि कोई बड़ी देन थी तो वह यह थी कि व्यक्तिगत उन्नति समाज के साथ (Individual progress in relation to Socity) जनता ही उनका हिमालय बन गई, सेवा ही साधना बन गई। आज भी जिस चीज की हमको जरूरत है, वह यही कि हम व्यक्ति और समाज को अभिन्न मान कर चलें। व्यक्ति का अलग व्यक्तित्व भी कायम रहे और समाज के लिए ही वह जिये। अध्यात्म और व्यवहार में अन्तर कम हो, विरोधाभास कतई न हो। शुद्ध व्यवहार ही सच्चा अध्यात्म बन जाये। मन्दिर और दुकान का विरोध मिट जाये।

---

1. The life of the moral man is plain and yet not unattractive; it is simple and yet full of grace; it is easy and yet mathodical. He knows that the accomplishment of great things consists in doing little things well.

सुधारवाद और समाज-परिवर्तन

अब हम मुख्य प्रश्न पर आते हैं। ऊपर भूमिका की दृष्टि से तत्त्व-चिन्तन कर लिया। अपने देश में सुधारवादियों की कमी नहीं रही। लोगों को अच्छी बातें सिखाने वाले हर समय इस देश में रहे हैं। पापों का शमन कराने के लिए अनेक यज्ञ यहां के लोग अपने-अपने पुरोहितों से कराते रहते हैं। पाप की शृंखला ही टूट जाये, सारा जीवन पुण्यमय बन जाये, वैसा कम होता आया है। इस देश में धर्म को भी जघन्य से जघन्य पाप का साधन बनाने की नौबत आज आई है। ठीक वही दशा राहत के समय दीखती है। जब कोई वर्ग या प्रदेश अकाल, बाढ़, भूकम्प या रोग से ग्रस्त होता है तो तुरन्त सबका ध्यान उनकी मदद करने की ओर जाता है। जगह-जगह सहायता-शिविर (Relief Camps) खुल पड़ते हैं। करुणा गुण उत्तम है, लेकिन रहम के दर्जे पर उतर कर दयनीय ही बन जाता है। यह नहीं सोचा जाता कि वैसी मुसीबत की जड़ कहां है? उसी का इलाज क्यों न किया जाये? दान, धर्म अच्छी बातें हैं, लेकिन केवल राहत और सुधार तक सीमित रहकर निकम्मे ही नहीं बनते, उल्टे समाज के विकास में बाधक भी बनते हैं। अमीर से आपने दया-धर्म के नाम पर थोड़ा दान करा दिया तो गरीब को थोड़ी मदद तो मिल जाती है और अमीर को यश और समाधान भी मिल जाता है, लेकिन उससे आप उसके परिग्रह को स्वीकृति भी देते हैं और उसके संग्रह करने के सब नाजायज, अनैतिक व शोषणजन्य उपायों को भी सहन करते हैं। पर यदि यही दान इस बात में बदल दिया जाये कि आज थोड़ा देता हूं, देना सभी है, क्योंकि यह समाज का ही है, सबको सबमें बांटकर खाना है, 'दानं सम विभागः'—तो अमीरी, गरीबी का भेद मिटाने की दिशा में यह एक कदम होता है, जो सारे मूल्यों को, समाज को, व्यक्ति को बदल देने की शक्ति रखता है। इसीका नाम आर्थिक सामाजिक क्रान्ति हुआ।

साम्यवादी लोगों का कहना है कि ये सुधारवादी लोग धर्म का नाम लेकर गरीबों के काम में रोड़ा डालते रहते हैं। इनके कामों से क्रान्ति रुकती है। इसमें काफी सत्यांश है। सुधारवादी भूत दया से द्रवित होते हैं। चींटी को भी आटा-शक्कर खिलाने तक का कार्यक्रम इसीलिए उठाते हैं, पर मानवीय समस्याओं

की गहराई में नहीं जाते, समाज की समस्याओं की जड़ तक नहीं जाते। जो भी थोड़ा-बहुत सेवा का काम हो जाये, उसीमें समाधान मान लेते हैं। मैं इसे खतरनाक तो नहीं कहता। कुछ न कुछ तो परोपकार होता ही है। लेकिन इतना जरूर कहना चाहता हूं कि इससे व्यक्ति-विकास और समाज-विकास दोनों पूर्णता की दिशा में बहुत अधिक नहीं जा पाते। प्रथम तो सकाम-भावना बड़ी रुकावट बनती है। यश की लालसा में परोपकार होता है। दूसरे समाज में उससे त्याग की वृत्ति नहीं पनपती। निष्काम-वृत्ति से समाज की सेवा और अपने लिए कम से कम लेने की त्याग-वृत्ति बिना मनुष्य का विकास असम्भव है। समाज भी तब तक आगे नहीं बढ़ेगा, जब तक कि आपसी स्वार्थ कायम रहेंगे। आज बहुत बड़ी जरूरत इस बात की है कि जिन गुणों का विकास हम व्यक्ति के लिए जरूरी मानते हैं, बड़े व्यापक स्वरूप में समाज भी उसे कबूल करे और यह नहीं होगा जब तक कि हम सबके स्वार्थ एक नहीं होते हैं।

आज तो चारों ओर सत्ता है, शोषण है, विषमता है, स्पर्धा है। एक दूसरे की जेब से पैसे मेरी जेब में कैसे आ जायें, इसी की तालीम सर्वत्र सीखने की कोशिश में मनुष्य है। मुट्ठी भर लोग दूसरों पर शासन करते रहें, इसीकी योजनाएं सर्वत्र बनती रहती हैं। गरीबी, बेकारी मिटने के बजाय भयंकर बनती जा रही है। एक दूसरे की होड़ ही लगी है। कोहनी से धकेल कर भी हर एक आगे बढ़ने की कोशिश में लगा है। यह सब कैसे मिटे ? सारा समाज एक घर कैसे बने ? जहां स्पर्धा की जगह सहयोग हो, सत्ता की जगह मार्गदर्शन हो, सब समान हों और कोई किसी के शोषण की योजना न बनाता हो। जाहिर है यह उसी नियम के आधार पर हो सकता है, जो घर को टिकाये रहता है। घर में प्रेम का सूत्र ही एक ऐसा मजबूत माध्यम होता है, जो सबको एकरूप बनाये रखता है। उसीसे वहां दूसरे सारे सद्‌गुण, संस्कार पनप सकते हैं। भारतीय समाज-रचना की ईंट परिवार-संयोजन है। यह संस्था हमारी संस्कृति जितनी ही प्राचीन है। इसलिए घर के न्याय को हम बखूबी जानते हैं। लेकिन उसी न्याय को घर से बाहर नहीं लागू करते। यह सधे इसी उद्देश्य से पूज्य विनोबाजी ने भूदान-यज्ञ का कार्यक्रम देश को दिया है। इसमें प्रेम का, करुणा का, अहिंसा

का केवल व्यक्तिगत पहलू ही नहीं है, बल्कि पूरे समाज को अनुप्राणित करने की शक्ति निहित है। पिछले पांच वर्षों में हमने देखा कि जिस जमीन से लोग इतने चिपके रहते थे कि भाई-भाई में सिरफुटाई होती थी, वही जमीन आज विनोबा ने हवा, पानी, सूर्य की रोशनी की तरह बहा दी है। लोगों के दिमागों में बड़ा भारी परिवर्तन आया है। दूसरों का भी हक है। पूरे गांव को एक होकर उन्नति करनी है। अपनी व्यवस्था, अपनी योजना, अपना कारोबार खड़ा करना है, तभी स्वराज्य प्राप्त होगा।

इस देश में बहुत सारे सज्जन आज भी मौजूद हैं। दुर्जन भी हैं। सज्जनों की सज्जनता को सक्रिय होना पड़ेगा और संगठित भी। यों देश में अनेकों संगठन हैं, पक्ष-विपक्ष हैं लेकिन सज्जनों का, दुर्जनों का ऐसा कोई संगठन नहीं है, वैसी सम्भावना भी नहीं है। लेकिन यह हो सकता है कि राष्ट्रीय पैमाने पर कुछ कार्यक्रम ऐसे हो सकते हैं, जिनमें देश की अच्छी शक्तियां एक राय होकर सक्रिय रूप से जुट सकती हैं। हमारी दृष्टि में भूदान एक ऐसा कार्यक्रम है, जिसमें सज्जनता को सक्रिय और संगठित होने का पूरा अवसर मिलता है। यदि यह हुआ तो बहुत जल्दी देश की गरीबी, बेकारी और मुसीबतें दूर हो सकती हैं। मानव मात्र की विश्व-कलह की ज्वाला से रक्षा हो सकती है। मुझे मालूम नहीं 'अणुव्रत' में संलग्न भाइयों में से कितने इस बात से सहमत होंगे और कितने सक्रिय। वैसे ही भूदान-यज्ञ में संलग्न कार्यकर्त्ता अणुव्रत की जो शक्ति है उसका उपयोग कितना करते होंगे, सो भी कहना कठिन है। दोनों एकरूप, एकरस होकर आगे बढ़ें तो दोनों का उद्देश्य सफल होगा। परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि वह हमें वैसा बना दे।

●



१५

नैतिकता की ओर महान् कदम

—श्री माईदयाल जैन, बी० ए०, बी० टी०

आधुनिक युग को बड़े पैमाने पर चलने वाले उद्योगों और नये-नये रिकार्डों का युग कहा जाता है। एक-एक उद्योगपति यानी मिल मालिक बीसियों मिलों की शृंखला का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से स्वामी है और उसके नीचे बीस-तीस हजार तक कर्मचारी और नौकर काम करते हैं। उन मिलों में बनने वाली चीजों की संख्या लाखों और करोड़ों तक होती है और वजन भी हजारों और लाखों मन तक पहुंच जाता है। इसी प्रकार नैतिक पतन भी इस युग में व्यक्तिगत, सामूहिक या सरकारी रूप से बड़े पैमाने पर हो रहा है। इस नैतिक पतन को हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के पांच बड़े भेदों में बांटा गया है। संसार भर में होने वाले सभी छोटे-बड़े बुरे काम इनकी गिनती में आ जाते हैं। एटम बम तथा हाइड्रोजन बम से लाखों आदमियों को मार देने से लेकर और किसी को गाली देकर उसका मन दुखाना भी हिंसा है। सरकारी कूटनीति से लेकर घर या दुकान पर बोला जानेवाला छोटे से छोटा झूठ भी झूठ है। बड़े-बड़े देश हड़प कर जाना, इन्कमटैक्स के लाखों रुपयों की चोरी कर जाना और सरकारी दफ्तर से एक कागज या पेन्सिल तक लाकर निजी काम में लाना चोरी है। व्यभिचार के बड़े-बड़े अड्डों पर होने वाले व्यभिचार से लेकर पराई स्त्री की ओर कुदृष्टि से देखना मात्र यहां तक कि स्व-स्त्री से भी संभोग करना अब्रह्मचर्य है। और बड़े-बड़े साम्राज्यों या उपनिवेशों का निर्माण करना और अपने घर में अन्धाधुन्ध काम बेकाम की वस्तुओं का संग्रह करना परिग्रह है। पहले भी इस प्रकार होने वाले पाप या अनैतिक कार्य कम न थे, पर अब तो इन्सानी दिमाग नित नये-नये अनैतिक कामों का न केवल आविष्कार ही कर रहा है, वरन उन पर इस तरह मुलम्मा करता है या उनको

ऐसा रूप देता है कि कानूनी तौर से या बाहरी तौर से वे काम अनैतिक दिखाई भी नहीं देते हैं। इसको नैतिक पतन की पराकाष्ठा या चोरी और सीनाजोरी न कहा जाये तो और क्या कहें ?

इस नैतिक पतन का फल विश्व भर की जनता में फैला हुआ दुःख है। इन विविध नैतिक पतनों से लोगों को कष्ट और दुःख है, पर वे स्वयं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में इन पापों या नैतिक पतन के कार्यों को किसी न किसी रूप में करने या कराने के जिम्मेदार हैं। हम औरों के कामों की शिकायत करते हैं, रोना रोते हैं और भला-बुरा कहते हैं, पर अपने कामों की ओर ध्यान नहीं देते। हमें अपनी बड़ी से बड़ी बुराइयां दिखाई ही नहीं देती। अनैतिकता के इस महासागर में आज कुछ इनेगिने व्यक्तियों को छोड़कर सभी नंगे हैं। इस अनैतिकता के लिए कोई कलियुग को दोष देता है, कोई सरकार को तो कोई जनता को। कोई मन्त्रियों या शासन-प्रणालियों को, कोई अर्थ-व्यवस्था को तो कोई सामाजिक व्यवस्था को। कोई पूंजीपतियों को तो कोई मजदूरों को और कोई बड़े आदमियों को तो कोई जनसाधारण को। पर सच बात तो यह है कि हम सभी दोषी हैं।

इस सर्वव्यापक अनैतिकता का इलाज क्या है ? इसका इलाज और रोकथाम कौन करे ? सरकार इसे कैसे रोके और जनता इसे बन्द करने के लिए क्या करे ? इस गन्दगी को कौन साफ करे ? आज बिल्ली के गले में घंटी बांधने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है अनैतिकता रूपी महादानव को काबू में करने का। सब तरफ इस अनैतिकता के विरुद्ध आवाजें उठ रही हैं और त्राहि-त्राहि हो रही है। अन्धकार में तो एक जुगनू की चमक यात्री को मार्ग दिखा सकती है और एक तारा उसका पथ-प्रदर्शक बन सकता है। फिर यह तो बड़े ही हर्ष और आशा देनेवाली बात है कि आचार्य श्री तुलसी ने इस अनैतिकता के विरुद्ध भारत में कदम उठाया है। वे प्रकाश-स्तम्भ बनकर न सिर्फ स्वयं रास्ता ही दिखा रहे हैं, वरन नेता और अगुआ बनकर अपने सैकड़ों शिष्य-साधुओं के साथ इस महादानव को वश में करने के लिए तैयार हुए हैं। उन्होंने इस काम को व्यवस्थित ढंग से करने के लिए अणुव्रत-आन्दोलन का प्रवर्तन किया है और वे इस आन्दोलन

को अपनी देखरेख में संचारित कर रहे हैं। हर एक अणुव्रती को बहुत-सी प्रतिज्ञाएं करनी पड़ती हैं या यों कहो कि व्रत लेने पड़ते हैं, जिनमें नये और पुराने बहुत से पापों को या अनैतिक कामों को न करने का संकल्प होता है। आन्दोलन कार्य के अनुभव के बाद ग्यारह सूत्री कार्यक्रम बनाकर जनसाधारण के लिए अणुव्रतों को और सुगम बना दिया है। पर पहले नियम जितने कठोर थे, ये उतने ही सरल हैं। फिर भी नियमों की कठोरता के विरुद्ध कहीं-कहीं से आवाज आई है। आज देश की प्रमुख आवश्यकता अनैतिकता को दूर करना है। उसे कौन दूर करता है और कैसे दूर करता है, इन बातों की तरफ विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है, जितनी कि आवश्यकता इस आन्दोलन को बल तथा सहयोग देने की है। सार्वजनिक रूप से एक तपस्वी के नेतृत्व में जनता का यह एक बड़ा कदम है। इससे भी बड़ी बात यह है कि इस आन्दोलन को सफल बनाने के लिए आचार्य श्री तुलसी के सैकड़ों शिष्य आज टोलियों में बंट कर देश के कोने-कोने में इस आन्दोलन का सन्देश पहुंचा रहे हैं। कहा जाता है कि अब तक इस आन्दोलन के ३००० सदस्य बन चुके हैं। यह बड़ी अच्छी बात है ?

अणुव्रत-आन्दोलन का महत्त्व बहुत है। यह हमारे अनैतिक जीवन को शुद्ध करेगा। जनता को कुछ सुख देगा और इसके सदस्यों को आध्यात्मिक उन्नति के पथ पर अग्रसर करेगा। हमारा वर्तमान जीवन महान् अनादि अनन्त जीवन का एक अत्यन्त छोटा-सा मार्ग है। उस जीवन के किसी भी समय में हम कभी सुधार-मार्ग पर चल पड़ें, तभी अच्छा है। इस आन्दोलन की तुलना मोरल-री-अर्मामेण्ट-मूवमेंट और आचार्य विनोबा भावे के भूदान-यज्ञ आन्दोलन से की जा सकती है। यह आन्दोलन अभी अपनी शिशु अवस्था में है। इसकी हर प्रकार से रक्षा, देखभाल और संवर्द्धन की आवश्यकता है। आशा है कि आचार्य श्री तुलसी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के अनुशासन और देखरेख में यह आन्दोलन दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करेगा।

●

१६

परिस्थिति का तकाजा

—श्री लक्ष्मीनारायण भारतीय

जब कोई सामाजिक गुण अभावरूप बनकर तीव्रता धारण कर लेता है तो उस काल में उसका भावरूप ही महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट बन जाता है। सत्य द्वापरादि युगों में जो गुण सामान्य एवं जो दोष असामान्य माने जाते होंगे, वे आज के युग में उलटे रूप में माने जाते हैं। धर्मराज का 'नरो वा कुंजरो वा' भीम का 'कटि के नीचे गदा प्रहार' आदि दोष असामान्य माने गये थे, जबकि आज ऐसे दोष इतने सामान्य हो गये हैं कि इन्हें राजनीति, समाजनीति व लोक-व्यवहार आदि में प्रतिष्ठा तक प्राप्त हो गई है। चोरी, झूठ, दगाबाजी, धोखादेही आज असामान्य दोष नहीं, प्रतिष्ठित दोष माने जाते हैं। उस रोज पांच आने की छटांक मेंहदी सस्ती जानकर जब मैंने खरीदी तो पता चला कि वह तो डेढ़ आने पाव की है। मैं वापस उसके पास गया तो उसने कहा, 'यह तो दुकानदारी है—हम चाहे जितना मुनाफा लें। आपको जरूरत हो तो खरीदो। ऐसा करना ही होता है' इत्यादि-इत्यादि। ऐसी प्रतिष्ठा आज असत्यादि दुर्गुणों को प्राप्त हो गई है। वह तो बहुत छोटा दुकानदार था। हर क्षेत्र एवं हर कारोबार में यही पाया जायेगा। अत्यन्त ईमानदार, ईश्वर-भक्त एवं सज्जन पुरुष भी जब थर्ड क्लास में जाकर फर्स्ट का पैसा बिल में जोड़ता है तो वह यही मानता है—'हमने कोई गलत काम नहीं किया है। यह तो तरीका ही है'। और बिल मंजूर करने वाले भी यह जानते ही हैं।

ऐसी स्थिति आज है, फिर भी यह निराशाजनक नहीं है, क्योंकि इतने दोषों, अवगुणों आदि के बावजूद वह जन-सामान्य इनके खिलाफ ही शिकायत करता है तो मानना चाहिए कि उसके मन में कहीं तो भी एक ऐसी चीज बची है, जो उसको उद्वेलित करती रहती है। खुद इनका शिकार होते हुए भी उसके खिलाफ

जब वही शिकायत करता है तो इसके मानी है, उसका हार्द अभी साबित है और पानी पर सिर्फ गहरी काई भर आ गई है। यही हार्द उसकी सद्सद् विवेक-बुद्धि को जागृत करता है, भले ही परिस्थिति, लाचारी या मोह उस बुद्धि की कुछ चलने न दे। अभी वह ऐसा निर्घृण नहीं बना है, जो भीतर की इस चुभन को ढोंग का आवरण माने या ढोंग ही बना दे। यदि आज के छल-फरेब और झूठ के भीतर हम गहराई से देखें तो पता चलेगा कि इन सबके बावजूद जनता का 'हार्द' अभी कायम है। निःसन्देह वह प्रतिकार क्षम्य नहीं है, प्रभावशाली नहीं है और नपुंसक-सा बन गया है, लेकिन अस्तित्वहीन वह अभी नहीं हुआ है।

एक होता है ऐसा पापी, जो प्रवाह में बहकर पाप करता ही जाता है और ऐसी क्षमता नहीं रख पाता जिससे कि वह उसका मुकाबला कर सके। दूसरा होता है ऐसा पापी जिसका अन्तर मर चुका होता है और कोई अघटित हुए बिना वह बदल ही नहीं सकता। यद्यपि ऐसा पापी कभी बदल भी सकता है, क्योंकि वह मनुष्य है, तथापि यह अपवादात्मक स्थिति है, सर्वसामान्य नहीं। प्रथम प्रकार के पापी का परिवर्तन ऐसी अपवादात्मक स्थिति नहीं मानी जा सकती, क्योंकि वह प्रवाह-पतित होता है तो ऐसा पापी, चूंकि उसका अन्तर साबित होता है, परिस्थिति में से उसे यदि कोई उबार दे तो वह फौरन सही राह पर पहुंच जाता है। आज समाज की स्थिति इसी तरह की है। उसके उस साबित 'हार्द' को स्पर्श करके जो उसे बचा सकेगा, वही उसका मसीहा साबित होगा। लेकिन यह केवल उपदेश या तत्त्व-विवेचन से होने वाली चीज नहीं है।

किसी व्यक्ति के हार्द को स्पर्श करने के लिए, उसे जागृत करने के लिए सामने वाले का हार्द भी ऐसा ही प्रभावशाली होना चाहिए, जो अपने को तो बचा ही ले, सामने वाले को भी मोड़ दे। इसके लिए उसके अन्तर में केवल करुणा ही होनी चाहिए और वह भी ऐसी करुणा, जो केवल सहानुभूति तक ही सीमित न रहे। ऐसा व्यक्ति सामनेवाले को सहज ही मोड़ देता है, यह दैनन्दिन जीवन का अनुभव है। अपनी तपस्या से, सेवा से, कष्ट-सहन से वह सामने वाले के हार्द को जागृत कर देता है एवं विचारों से उसे प्रभावित भी। लेकिन यह हुई व्यक्तिगत क्षेत्र की वस्तु। सामाजिक क्षेत्र में इतने ही प्रयत्न काफी

नहीं होते, एक व्यक्ति हीं पर्याप्त नहीं होता। इसलिए सन्त, महात्मा, मसीहा इतने हुए, लेकिन प्रवाह पतित बनने की परम्परा चलती ही रही। हर समय समाज पतित बने और कोई मसीहा उसे आकर बचा ले, यह परम्परा तो चली आ रही है। तब उस परिस्थिति की चिन्ता करने की जरूरत ही क्या ? 'यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारतः !' हमारी मदद के लिए है ही। लेकिन उस जमाने में, जब भयानक दोष व्यक्ति-व्यक्ति तक ही सीमित रहते थे, एक मसीहा या एक संत—महात्मा काफी हो जाते थे। परन्तु जब ये दोष सामाजिक बन गये हैं तो उसका मुकाबला भी सामाजिक रूप से ही करना होगा। समाज के हार्द को जगाने के लिए समूहगत तपस्या ही करनी होगी। ऐसे समाज के मुकाबले समर्थ और प्रतिकारवान् हार्द वाला समाज ही खड़ा करना होगा। इसका अर्थ है, संत, महात्मा या मसीहा सिर्फ एक के बन जाने से ही काम नहीं चलेगा। दूसरे शब्दों में, समाज पापी बने और उसका उद्धार दूसरा कोई एकाध व्यक्ति ही करे, इतना ही अब काफी नहीं होने वाला है। समाज को ही यह भार अपने ऊपर लेना होगा।

इसका मतलब है, अब ऐसे प्रयत्न व्यक्तिगत नहीं, समूहगत, सामाजिक रूप से ही करने होंगे। जब हम यह कहते हैं कि समाज पाप के गर्त में है तो इसके यह मानी नहीं कि पूरा समाज पाप के गर्त में होता है। बहुजन समाज की यह स्थिति होती है। अल्पजन समाज ऐसा बच भी जाता है—यद्यपि कोई ठीक रेखा नहीं खींची जा सकती। सार यह कि मधुसंचयवत् ऐसे जन का संयम करके सम्पूर्ण समाज के हार्द को जगाने का कार्य सामूहिक प्रयत्नों द्वारा किया जाना अवश्यम्भावी है; जिस बहुजन समाज में हम दोष-बाहुल्य पाते हैं, वह भी सम्पूर्ण दोष-निष्ठ नहीं होता। अतः सामाजिक प्रयत्नों में उसका भी सहकार सक्रिय रूप से मिल जाता है। इस तरह एक ऐसी सामाजिक प्रतिरोध शक्ति खड़ी हो सकती है, जो सम्पूर्ण समाज को मोड़ दे। निःसन्देह उसके लिए आधार है, बुनियाद है—तपस्या और सेवा ही जो समाज के हार्द को सक्रिय कर सके। ऐसे समूह को इसकी दीक्षा व्यक्तिगत प्रयत्नों के द्वारा देकर एक सामाजिक शक्ति खड़ी की जा सकती है।

इस विवेचन के प्रकाश में अब जैन परिव्राजकों की संस्था की समूह-शक्ति का उपयोग एवं महत्त्व सहज दृष्टिगोचर हो सकता है। आज साधु, सन्त या महात्माओं में दम्भ, ढोंग, झूठ आदि का ही बोलबाला है। लेकिन तब भी हमारा मानना है कि जैन परिव्राजक साधु-साध्वियों में दम्भ, ढोंग, झूठ का ऐसा सामाजीकरण अभी नहीं हुआ है। यद्यपि रूढ़िवादिता का प्राबल्य उनमें है और वह उनके विकास में एवं शक्ति में बहुत बाधक है, फिर भी उनकी शक्ति यदि नये रूप में, संगठित रूप में काम में लाई जाये तो वह प्रभावशाली बन सकती है, ऐसा हम मानते हैं। इसका हमें सिर्फ संकेत ही यहां करना था। हमें कहना यह है कि ऐसे सामाजिक प्रयत्नों में जैन समाज किस प्रकार योग दे सकता है, यह वह पहचान ले। उसका अद्भुत प्रभाव अभी उस जमात पर है। ऐसी जमातों को ऐसे परिव्राजक प्रेरित करते रहें तो सामूहिक प्रयत्नों में वृद्धि हो सकती है। लेकिन उसके लिए मूलभूत परिवर्तन दृष्टिकोण, कार्य एवं पद्धति आदि में करना होगा, केवल धर्मोपदेश एवं रूढ़िपालन से काम नहीं चलेगा।

ऐसे सामाजिक प्रयत्नों की आवश्यकता एवं उपयोगिता के बीच जब हम अणुव्रत-आन्दोलन को देखते हैं तो बहुत आशा नजर आती है, क्योंकि जैन साधुओं की उज्ज्वल परम्परा में से निकली हुई यह चीज जैन समाज तक ही अपने को सीमित न करके, पंथ विशेष तक ही अपने को न बांधकर जो कदम इस आन्दोलन ने उठाया है, वह उसकी प्रगतिशीलता एवं उपयोगिता को ही प्रकट करता है। यह प्रगति यहीं तक न रुककर भीतर पैठी हुई रूढ़िवादिता का भी प्रतिरोध यदि कर सकी तो उसकी तेजस्विता में वृद्धि ही होगी।

'देश सर्वतोऽणु महती'—अल्प अंश में विरति 'अणुव्रत' एवं सर्वांश में विरति 'महाव्रत' है; अर्थात् हिंसादि दोषों से मन, वचन, काया द्वारा हर तरह से छूट जाना– यह हिंसा विरमण ही महाव्रत है और 'चाहे जितना हो, लेकिन किसी भी अंश में कम छूटना—ऐसा हिंसा-विरमण अणुव्रत कहलाता है।' यह है जैन-व्रत-तत्त्व। इस आधार को लेकर अणुव्रत आगे बढ़ा है। वस्तुतः यह बौद्ध मध्यम मार्ग के ही समकक्ष है। मनुष्य के त्याग, सेवा, गुण आदि की सीमा नहीं हो सकती, लेकिन व्यवहार-क्षेत्र में कुछ मर्यादाएं आ जाती हैं। यही व्यव-

हार तत्त्व ग्रहण कर अणुव्रत-आन्दोलन ने मध्यम मार्ग ग्रहण करके समय-सूचकता ही दिखाई है। जब दोष सर्व-सामान्य एवं गुण असामान्य बन जाते हैं, तब ऐसा ही मध्यम मार्ग कामयाब हो सकता है। इस दृष्टि से अणुव्रत-आन्दोलन सामयिक, व्यावहारिक एवं संरक्षक आन्दोलन है। इसीलिए उसने इतनी लोकप्रियता भी धारण करली है। समय की पुकार की प्रतिध्वनि उसमें दृष्टिगोचर हुई, यह स्पष्ट ही है। जैसा कि हमने ऊपर कहा है, इसने जैनेतरों में प्रवेश करके प्रगति की सीढ़ी नापी है, उसी तरह क्रमशः आगे बढ़कर रूढ़िवाद पर भी कठोर प्रहार उसके द्वारा होना उसकी व्यापकता एवं गहराई के लिए अनिवार्य है। जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, धर्म, मत, देश के बन्धनों से रहित होकर पराक्रम करने की उसकी क्षमता तभी अधिक प्रभावशाली हो सकती है।

लेकिन यह तो हुआ उसका जीवनामृत, पर आज समाज में पैठी हुई सर्व-साधारण दोष-प्रवृत्ति को मिटाने के लिए उसको जो काम करना है उसके लिए आवश्यक है, उसमें ऐसी गत्यात्मकता जो जन-जीवन से ओतप्रोत हो। व्रतादि नकारात्मक (नेगेटिव) स्वरूप हैं। सकारात्मक (पॉजेटिव) स्वरूप के लिए उसके साथ ऐसे कार्यक्रम का जुड़ना जरूरी है, जो समाजगत हो। अर्थात् समाज में स्थित 'हार्द' को जागृत करने के लिए उसका भी हार्दयुक्त होना जरूरी है और यह हार्द-वृत्ति तभी सामाजिक रूप में कार्य-प्रवण हो सकती है, जब उसका कार्यक्रम भी वैसा बने। ऐसा कार्यक्रम, जो समाज की करुणा का आह्वान करे, स्वयं भी करुणायुक्त हो और सामाजिक रूप में उस करुणावृत्ति को जागृत करे। रचनात्मक पक्ष सुधार पक्ष है। वह तो अवश्यम्भावी है ही, लेकिन ध्यान रखने की बात है कि केवल रचनात्मक काम कभी पर्याप्त नहीं होते। उसे जन-जीवन का आधार जरूरी है और जन-जीवन तभी आधार दे सकता है, जब जन-जीवन से सम्बन्धित कोई जीवित समस्या हाथ में ली जाये।

अणुव्रत-आन्दोलन नव समाज के निर्माण में अपना पूरा हिस्सा दे एवं उसके द्वारा 'गुणों की असामान्यता, दोषों की सामान्यता' वाली आज की स्थिति बदलने में भी पूरा योग मिले, यही हम सबकी आकांक्षा है।

●

१७

अणुव्रत-आन्दोलन की पृष्ठभूमि

—श्री देशमित्र

आचार्य विनोबा ने एक बार कहा था कि 'सत्य और अहिंसा पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना है, जिसमें जाति-पांति न हो, जिसमें किसी को शोषण करने का मौका न मिले, जिसमें व्यक्ति-व्यक्ति को सर्वांगीण विकास करने का पूरा अवसर मिले।' आज ठीक इसी प्रकार के विचार आचार्य तुलसी ने 'अणुव्रत-आन्दोलन' के उद्देश्य के बारे में व्यक्त किये हैं, 'अहिंसा के प्रचार द्वारा विश्व-मैत्री और विश्व-शान्ति का प्रचार करना।' अणुव्रती के विचार-प्रवाह में भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों का अनूठा सामंजस्य मिलेगा। एक विशेषता मिलेगी जिसका अन्यों में पाना दुर्लभ है। वह यह कि अणुव्रत-व्यवस्था की मूल भित्ति निषेधात्मकता पर आधारित है। वस्तुतः यह कहा भी गया है कि निषेध ही अधिक विशुद्ध रहा करता है।

भारत का इतिहास साक्षी है कि वह सदैव से धर्म-प्रधान देश रहा है। धर्म की पृष्ठभूमि पर ही भारतीय आदर्शों का चित्रण हुआ है। धर्म वह है, जो धारण किया जाये। आज का युग भौतिकवादी युग है। विज्ञान के इस युग में भारतीय दार्शनिकों ने किसी प्रत्यक्ष को पूर्णरूपेण स्वीकार नहीं किया। उनकी व्यवस्था में जीवन का मुख्य लक्ष्य निःश्रेयस्-प्राप्ति रहा। परम्परा से चली आई हुई अक्षुण्ण भारतीय संस्कृति सदैव ही अहिंसात्मक रूप में रही। जिस प्रकार बिन्दु-बिन्दु से घड़ा भर जाता है, उसी प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति के मिलने से समाज एक मंगल सूत्र में बंध कर व्यष्टि से समष्टि का रूप धारण करता है। जन-जन की आत्मा के रूप में अणुव्रत समाज से सम्बन्धित है। वह मानव का ध्यान इस ओर दिलाना चाहता है कि वह अपने ध्येय में प्रवृत्त होता हुआ, आशंकित दोषों की ओर से सावधान रहे और उनसे बचने का प्रयत्न करता रहे।

इन सबका सरल रूपेण प्रयत्न अणुव्रतों के पालन से हो सकता है। अणुव्रतों का अर्थ है, ऐसे व्रत जो जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार में अहिंसा, शुद्धता, और सात्विकता की भावना का संचार करें तथा जीवन के नैतिक स्तर को ऊंचा करें। आज यह व्रत कुनीन की तरह कड़वे, परन्तु बाद में निश्चय ही फलदायक हैं। इस विचारधारा के प्रणेता एवं प्रवर्तक भारतीय संस्कृति के मर्मज्ञ आचार्य श्री तुलसी ने आज के इस भौतिकवादी युग में मानव-कल्याण का जो बीड़ा उठाया है, वह निश्चय ही महान् है। मानवीय इतिहास आध्यात्मिकता और भौतिकता का संकलन है। आध्यात्मिकता की छत्रछाया में मानव ने नैतिकता को ग्रहण किया और उसी नैतिक विकास का सक्रिय संचालन अणुव्रत-आन्दोलन कर रहा है। जनता के बिखरे हुए नैतिक स्तर को ऊंचा उठाने का प्रयास ही अविलम्ब प्रयत्न है। आज हृदय-परिष्कार की प्राथमिक आवश्यकता है, उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए यह एक प्रबल प्रक्रिया है।

आज यदि मानव-संसार के वास्तविक रूप की झांकी देखनी है और भविष्य में उसके मुखरित रूप का आस्वादन लेना है तो चरित्र-निर्माण के अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं। आज यह निर्विवाद सत्य है और सभी विचारकों ने एक आवाज से इस इकाई को पहचाना है कि व्यक्ति शुद्ध बने और अपने चरित्र को आदर्श बनाये। आज की सबसे बड़ी आवश्यकता चरित्र में सुधार करना है। आज हमारे सामने समस्याओं का ढेर लगा हुआ है। मानव-जीवन की नैतिक श्रृंखला उलझती जा रही है। ऐसे समय जन-जन की भावना को आत्म-रूप में परिवर्तन करने की जरूरत है। उनमें नैतिक आदर्शों का एकत्रीकरण हो, आज ऐसी आवश्यकता दीख रही है, क्योंकि व्यक्ति ही समष्टि का निर्माण-कर्ता है। मानवीय कुप्रथाओं के विरूद्ध नैतिक संघर्ष ही उसका मूल आधार है। आज आत्म-विश्वास, श्रद्धा एवं दृढ़ता के अभाव में मानव जर्जरित होता चला जा रहा है। भगवान् महावीर के वचनों में कितने सारगर्भित भाव निहित हैं कि आत्मा से आत्मा का सम्प्रेक्षण करो। इसी उद्देश्य को लेकर, नैतिक विश्वास पर व्यक्ति-विकास अणुव्रत-आन्दोलन का प्रमुख आधार है।

आधुनिक अर्थवादी युग में हमारा यह पहला और अन्तिम लक्ष्य बन गया

है 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ'। जीवन की सुख-सुविधाओं—भोगविलासी सामग्री का चरम विकास करना एक बार पहले भी इसी विचार-प्रवाह ने सैद्धान्तिक रूप धारण किया था और चार्वाक-दर्शन के नाम से हमारे सामने आया। उस समय भी हमने इसकी वास्तविकता को पहचाना। आज फिर अनैतिकता, भ्रष्टाचार आदि ने मानव पर आवरण डाल रखा है। परन्तु वह आवरण अब ज्यादा देर तक नहीं पड़ा रह सकता। संसार परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील संसार में परिवर्तन अवश्य होता है। युग प्रवाह है। संघर्ष वेला है। युग संघर्ष प्रिय है। संघर्ष जीवन का मंत्र बन चुका है। यह संघर्ष भौतिक-वाद और अध्यात्मवाद का है। आज मानव की दशा शोचनीय है।

भौतिकवाद के चक्र में फंसा मानव अपनी वास्तविकता को भूले कराह उठा—मैं देख रहा हूं परिवर्तन न जाने परिवर्तन क्या होगा ? परिवर्तन आज के युग का नारा है। आज के इस भौतिकवादी युग में विश्व-व्यवस्था के मूल आधार 'सत्य' को हम भूल रहे हैं। उसी दिव्य प्रकाश की ओर अणुव्रत-आन्दो-लन का कदम है।

आज की भ्रान्त धारणाओं को निर्मूल सिद्ध करने के लिए महात्मा गांधी का नाम भर ले देना पर्याप्त होगा। उन्होंने सत्य का प्रण और अहिंसा का साधन लेकर सामाजिक और राष्ट्रीय प्रश्नों को हल किया है। हमने अनुभव किया कि सत्य का आग्रह और अहिंसा की साधना व्यवहार के सूत्र हैं। वे शास्त्रीय होते हुए भी मानवीय हैं। यदि आज उन्हीं आदर्शों को सिद्धान्तों में बांध व व्यवहार में लाकर साहित्य सृजना करें तो जीवन, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को दुगुना बल मिलेगा। इस युग में एक कार्य तो हुआ कि कुछ हृदयों में श्रद्धा के भाव जागृत हुए और उन भावों ने संकल्पनात्मक शक्ति भी दी। आज अकर्मण्यता फिर से कर्मण्यता का रूप ले रही है। अब धीरे-धीरे आत्म-श्रद्धा की हीनता भी आचार्य तुलसी के नेतृत्व में दूर होगी, ऐसी आशा होने लगी है। अधिकांश में भयंकर थपेड़ों से क्षत-विक्षत कराहते मानव को विश्व-जनीन संगठन, आन्दोलन और योजना की आवश्यकता है।

अणुव्रत-आन्दोलन पाशविक प्रवृत्तियों के लिए एक सुदृढ़ चुनौती है।

अनैतिकता, अनाचार और भ्रष्टाचार की गहन अमा को दूर करने वाला दिव्य प्रकाश है। आज विश्व का कायाकल्प सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के व्रतों के पालन पर निश्चयात्मक रूप से हो सकता है, इसी मूल-भूत आधार को लेकर अणुव्रत-आन्दोलन कार्यक्षेत्र में उतरा है। व्यक्ति ही समष्टि है और अधार्मिकता, हिंसा, दुराचार, अशान्ति, शोषण सबके लिए यह एक अमोघ मंत्र है। नैतिक विश्वास के सहारे जन-जन के हृदय को झकझोर कर उसके उत्पीड़न में मानवता का संदेश पहुंचाना ही अणुव्रत-आन्दोलन की प्रमुख पृष्ठ-भूमि है। अणुव्रत-आन्दोलन का मुख्य ध्येय मानव-मानव की बुरा-इयों को दूर करना है। तभी हम जीवन की प्रखर प्रतिभा, साधना और ज्ञान में वृद्धि कर सकेंगे। यह क्रान्तिकारी दृष्टिकोण सर्वतोमुखी ज्ञान की प्रेरणा जागृत करता हुआ एक आत्मा, एक हृदय, एक भावना, एक आदर्श और एक संगठन के रूप में है।

जीवन की स्थितियां ही जीवन को प्रेरणा देती हैं। मनुष्य की परिस्थितियां ही इतिहास-निर्माण और युग-परिवर्तन के लिए मनुष्य को प्रेरित करती हैं। मार्क्स ने कहा है—अपना इतिहास स्वयं मनुष्य ही बनाता है। मनुष्य चिन्तन-शील प्राणी है। वह चेतन अचेतन का सम्पूर्ण सामंजस्य है। जड़ से उसका पिंड निर्मित होता है और मनस्तत्त्व से उसके मस्तिष्क की प्रक्रिया होती है। मनुष्य के भीतर एक कोई और मनुष्य है, जो अभावों में भी सन्तुष्ट और समृद्धियों के बीच भी भूख से व्याकुल रहता है। उसका आहार दाल-रोटी नहीं, बल्कि भाव और विचारों का सौन्दर्य है। जीवन की परिधि में जो भी उपकरण प्रवेश करते हैं, उनका एक उपयोग तो स्थूल मनुष्य करता है और दूसरा वह सूक्ष्म मनुष्य जो स्थूल के भीतर निहित है। हमारी संस्कृति देश के साधारणजनों में हजारों वर्षों से चली आ रही है। वह संस्कृति जिसकी आधारशिला है—सेवा, त्याग और स्नेह की प्रवृत्ति और जिसने यहां के सामाजिक संगठन को, कौटुम्बिक जीवन को इतनी शताब्दियों तक जीवित और सबल बना रखा है। आज का समाज भावना का प्रतीक भर रह गया है। उसके शब्दों में कला का सौन्दर्य है, प्रेरणा का सजीव स्पर्श नहीं। इस दिशा में भी

अणुव्रत-आन्दोलन अग्रसर है।

विश्व में शान्ति का साम्राज्य स्थापित हो सके, परस्पर सौहार्द की सद्भावना को जगा पृथ्वी पर स्वर्ग लाया जा सके और ऐसे नवयुग का दर्शन हो सके, जहां शोषण न हो, उत्पीडन न हो, वंचना न हो, इस दिशा में आचार्य तुलसी की विश्व को अणुव्रत के रूप में एक अनुपम देन है।

मानव रुचियों की तृप्ति अनिवार्य है। उन स्वाभाविक मांगों में एक मांग कल्पना-शक्ति की भी है। कल्पना मानव के ऐसे जूते हैं, जिन्हें पहन कर वह वास्तविकता के कठोर मार्ग पर चलने के योग्य होता है। कल्पना मानव के ऐसे गर्म वस्त्र है, जिन्हें पहनकर वह वास्तविकता के तीव्र शीत को सहन कर सकता है। कल्पना उसका ऐसा गुदगुदा बिस्तर है, जिस पर वह जीवन की कठोर यात्रा से थक कर विश्राम करता है। इसके बिना मानव का जीवन असहनीय हो जाता है। यह उसके अभावों की पूर्ति का साधन है। विश्व की अन्तिम सत्यता के सम्बन्ध में मनुष्य के सिद्धान्त उसकी कल्पना-शक्ति के प्रकाश हैं। यह प्रकाश सत्य ज्ञान पर आधारित है। कल्पनाशील से ही मनुष्य आविष्कार, कला और साहित्य रचना के योग्य हुआ है। मानव की ऐसी कल्पना ललित कलाओं के रूप में प्रकट होती है।

जीवन में कठिनाइयों पर विजय पाने के अयोग्य व्यक्ति झूठ और बेईमानी का अभ्यासी बन जाता है। पागलपन कठिनाइयों का सामना न कर सकने का ही परिणाम है। आज मानव भौतिकवादी प्रयोगों के आधार—कठिनाइयों में जा घिरा है। मानव को कठिनाइयों का साहसपूर्वक सामना करने की क्षमता सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के पालित मार्ग की ओर संकेत करता हुआ अणुव्रत-आन्दोलन आज एक निर्देशक के रूप में बढ़ रहा है।

१७

अणुव्रत-आन्दोलन

—कविवर श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

मुनि प्रवर आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रारम्भ किया गया अणुव्रत-आन्दोलन हमारे देश के नैतिक पुनरुज्जीवन की दिशा में एक मंगलमय एवं आवश्यक चरण-निक्षेप है। भारतवर्ष के द्रष्टाओं ने सहस्रों वर्ष पूर्व मानव-समाज के उत्थान का, उसके नैतिक विकास का जो तत्त्व बुद्धिंगम, हृदयंगम एवं आचरणगम कर लिया था, उसी सनातन तत्त्व की अभिनव आवृत्ति यह आन्दोलन है। इस प्रकार के आन्दोलन अनेक रूपों में आज देश में चल रहे हैं। प्रज्ञाचक्षु स्वामी शरणानन्दजी ने मानव-सेवा समाज की स्थापना का श्रीगणेश करके सामाजिक व नैतिक विकास की प्रेरणा प्रदान की है। ऋषि विनोबाभावे का भूदान-आन्दोलन भी इसी नैतिक विकास की चेष्टा कर रहा है। आचार्य श्री तुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन भी देश की आत्मा को और इस देश की समस्या को सजीव रूप से स्पर्श करता है। देश की आत्मा मानो आज एक अन्धे गलियारे में आकर अटक गई है। इसी देश की क्या, समूची मानवात्मा। और—

आकर अन्धे गलियारे में ठिठका जब गति का रुद्ध चरण,
अविशुद्ध लगन, हत बुद्ध वचन, जब ठिठका संभ्रम रत-जन-मन।
आशंका का आनद्ध बजा, जब संशय की दुन्दुभी बजी,
अब तर्क अभद्ध समर्थ हुआ, हिंसा की अक्षोहिनी सजी।
जब रक्त रास गतिमान हुआ, जब नेत्र हो गये लाल-लाल,
श्वासोच्छ्वास मिल अन्तर का फुफकार उठा जब क्रुद्ध व्याल।

जब ऐसी स्थिति हो गई, तब ये विनोबा, ये तुलसीगणी, ये प्रज्ञाचक्षु, महात्मा शरणानन्द हमें जीवन का अभिनव सनातन सन्देश देने के लिए हमारे बीच प्रकट हो गये।

मानव-समाज की इस समस्या के निकट इस प्रकार के समुपगमन (approach) को मैंने सनातन कहा है । हमें अपने मन को और अपनी बुद्धि को यह बात अच्छी रीति से समझा देनी है कि मानव की वर्तमान समस्या की रूपरेखा क्या है ? हम सब येन केन प्रकारेण जीवन-यापन तो करते ही हैं, पर जीवन-यापन करते हुए भी मानो हम किसी वस्तु की खोज में रहते हैं। खोज किस बात की ? इस बात की कि जीवन रसमय, आनन्दमय, उल्लासमय, निरलस कर्ममय, मैत्री व करुणामय, अहंता रहित और सन्मय बने । और हम जीवन में न जाने क्या हैं ? घृणा, ईर्ष्या, असत् व्यवहार, क्रूरता, लिप्सा, चढ़ा-उतरी, आपा-धापी । इस प्रकार हम अपने में अन्तर्द्वन्द्व पाते हैं । हम असत् निम्नगा वृत्तियों के दास हैं । पर हम उनको अतिक्रमित करने के अभिलाषी हैं । यह मानव-समाज की समस्या है ।

हम भयभीत हैं, वैर-भाव को पाल-पोस रहे हैं और चाहते हैं कि इन मनोविकारों से छूट मिल जाये । एक वाक्य में यदि कहें तो यों कहेंगे कि आज की मानव-समस्याएं और अधिक विकास की (Futher Evolution) समस्या है। यह द्विपद द्विभुज जन्तु और आगे कैसे बढ़े ? यदि वह और आगे नहीं बढ़ता है और ऊंचे नहीं उठता है तो मानवता का विनाश हो सकता है । मानव को और अधिक विकसित होना ही होगा, इसके अतिरिक्त उसके लिए गत्यन्तर नहीं है ।

मानव के ऊर्ध्वगमन अर्थात् और अधिक विकास के लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसके शारीरिक ढांचे में कोई प्राणि-शास्त्रीय (Biological) परिवर्तन हो । इसी साढ़े तीन हाथ के पुतले में ही महाप्राण मानवों का रूप धरा है, यह हम जानते हैं । राम, कृष्ण, जिनदेव, तथागत, यीशुख्रीस्ट, गांधी—ये सब जो सेन्द्रीय होते हुए भी निरिन्द्रियवत् रहते रहे; इसी साढ़े तीन हाथ के ढांचे वाले ही तो थे न ! अतः आज हमें भौतिक विकास के लिए प्रयत्न नहीं करना है । हमारा यह साढ़े तीन हाथ का तन महामानवत्व की ओर, नारायणत्व की ओर हमें ले जाने में सर्वथा समर्थ है । हमारे पूर्व अवतारी पुरुष इस बात के अकाट्य प्रमाण हैं ।

तब प्रश्न है कि मानव-समाज विकसित कैसे हो ? कोई माने चाहे न माने, मार्ग वही है और हमारे पूर्वज हमें दिखा गये हैं। क्षमा, तप, दान, शौच, त्याग, शान्ति, अपिशुनता, भूतदया, अलोलुपता, अचापल्य, मार्दव, आत्म-विनिग्रह आदि गुणों को जीवन में लाए बिना काम चलने का नहीं। लोग कह उठते हैं—अजी ! सामाजिक ढांचा बदलो, सब ठीक हो जायेगा। क्या सचमुच जहां सामाजिक ढांचा बदल गया है, वहां महामानवों का आविर्भाव होने लगा है ? नहीं, भाई ! सामूहिक परिवर्तन, सामाजिक नव-निर्माण की आवश्यकता से मुझे इन्कार नहीं। पर उसे न भूलो, जो समाज भवन की ईंट है। वह है 'व्यक्ति'। व्यक्ति का परिवर्तन आवश्यक है और यहां हमारा मार्ग प्रदर्शन तुलसीगणी, विनोबा आदि करते हैं।

अणुव्रत—एक छोटा-सा व्रत जीवन में अंगीकार करो। उसे निभाओ। तुम देखोगे कि परिवर्तन आरम्भ हो गया है। 'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्'। मेरी समझ में यही आचार्य श्री तुलसी का सन्देश है। कुम्हार, लुहार, चमार, व्यापारी, ब्राह्मण, सब एक अणुव्रत के द्वारा, एक छोटे से व्रत के सहारे जीवन में और इस प्रकार समाज में परिर्वतन ला सकते हैं। हमारे पुराण पुरुषोत्तमों ने यह तत्त्व हृदयंगम कर लिया था। इसी कारण वे राम-साहित्य पर बल देते थे। आचार्य श्री तुलसी ने यह अणुव्रत-आन्दोलन चलाकर हमारे समाज का पथ-प्रदर्शन किया है। मैं उन्हें एक नैतिक ज्योति-शिखा मानता हूं। मैं उनके सत्-संचरणशील, अथक, निरलस चरणों में अपनी प्रणामाञ्जलि अर्पित करता हूं।

●

१८

अणुव्रत और सांस्कृतिक उन्नयन

—श्री जैनेन्द्रकुमार

उत्थान तो नैतिक ही होता है। देह बढ़ जाए या उसका बल बढ़ जाए या आदमी के पास धन-सम्पत्ति बढ़ जाए तो उसको सही अर्थ में मनुष्य का उत्थान नहीं कह सकते। मनुष्य काया नहीं है, न पदार्थ है, न उसे बाहर की दूसरी चीजों के मान में नापा जा सकता है। वह तो आत्मवान् है। अन्दर की श्रद्धा, साहस, सद्भाव आदि में ही उसका सही मान और मूल्य है। दूसरे देश साधन, सम्पत्ति या उत्पादन के परिमाण से जीवन के ऊंचे मान का निर्णय अगर करते हों तो हो सकता है, अव्वल तो सही वह वहां के लिए भी नहीं है लेकिन भारतवर्ष को तो ये बिलकुल ही नहीं चाहिए। यहां की संस्कृति इस प्रकार की नहीं है, न वह इतनी सामयिक या पल्लव-ग्राही है। वह मनुष्य के मूल तक जाती है और उसके अभ्यन्तर से जुड़ी हुई है।

अणुव्रत में प्रधान व्रत है। व्रत का अर्थ मनुष्य को नाना समारम्भों से बचाना है। मामूली तौर पर आदमी यहां बिखरा रहता है। चारों तरफ की चाहें उसे सताती हैं और सभी कुछ वह पा लेना चाहता है। ऐसे वह कुछ भी नहीं पाता, केवल त्रास पाता है। इच्छाओं को खुली छोड़ने से मनुष्य का यही हाल होने वाला है। पानी के धोखे में जैसे बालू पर भागता हुआ हिरण अन्त में प्यास नहीं बुझा पाता, केवल भाग कर मर जाता है, वैसे ही इच्छाओं में बहते हुए और भागते हुए आदमी का हाल होना बदा है। वह बड़ा यत्न करता है और उखाड़-पछाड़ करता है, अन्त समय पाता है कि वह खाली हाथ है। वह लुट चुका है और अपने अन्तर का सब-कुछ गंवा चुका है।

व्रत इसी के खिलाफ चेतावनी है। यानी उससे हमें तट मिलता है। नदी के पास किनारे न हों तो जैसे वह फैलकर सूख जाएगी, दूर तक नहीं जा सकेगी, वैसे ही व्रत के जरिए आदमी इच्छाओं को किनारे नहीं दे पावेगा तो उसके

व्यक्तित्व का वेग निष्फल चला जाएगा और यह अधिक ऊंचे या आगे नहीं जा सकेगा। इस तरह व्रत जीवन को सफल और उन्नत करने का उपाय है। लोग कहते हैं कि धर्म में नकार होता है। यह न करो, यह न चाहो, वह न देखो और वह काम न करो। धर्म में इस तरह के निषेधादेश बहुत मिलते हैं, पर आजकल लोग जैसे ऐसी सीमाओं और मर्यादाओं को पसन्द नहीं करते। वे मानते हैं, जीवन ऐसे रुकता है, प्रशस्त नहीं होता।

पर यह भ्रान्त धारणा है। नकार तो रेखा है, जिसके अन्दर क्षेत्र घिरता है। ऐसा तो शून्य है जो क्षेत्रहीन है, वही रेखा के बिना हो सकता है। इस प्रकार की निषेध-रेखाओं से घबरा कर कोई शून्य ही बन सकता है, सफल नहीं बन सकता। असंयत व्यवहार से कभी किसी को सम्पन्नता नहीं मिली है। संयम में स्वेच्छापूर्वक मन को रोकना होता है। यह सही है कि बाहरी अंकुश लाभ नहीं करता, लेकिन अंकुश यदि भीतर का भी न हो तो ऐसा निरंकुश प्राणी स्वयं अपने लिए अन्त में भार स्वरूप हो जाता है। कहां तो वह ऐसे मुक्त बनना चाहता है, पर फल यह होता है कि इस प्रकार वह अपने को अतिशय बन्धन में और चारों ओर से जकड़ा हुआ अनुभव कर आता है।

अणु अर्थात् स्वल्पांश। कहा है—'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्' इस तरह व्रत का स्वल्पारम्भ भी हमारे विकृत जीवन को सही दिशा में मोड़ सकता है।

एक सभ्यता है जो आदमी को और उसकी इच्छाओं को सर्वतन्त्र स्वतन्त्र होने का लोभ देकर उसे खुला छोड़ देना चाहती है। यह उसे अपने अधिकार की चेतना देती है और बताती है कि उसका अधिकार अमित और असीम है। इस प्रेरणा के बल पर वह बढ़ना चाहता है और सुखोपभोग की सब सामग्री अधिकाधिक अपने लिए बटोरना चाहता है। इस प्रयत्न में वह दूसरों के दुःख-सुख या किसी प्रकार की नीति, अनीति, कर्तव्याकर्तव्य की धारणा पर अटकना नहीं चाहता। निःसन्देह वैसी प्रेरणा में से खूब तरक्की हुई है। मशीनें बनी हैं और उनसे धड़ाधड़ माल तैयार हो रहा है, लेकिन यह कहना कठिन है कि उससे आदमी का त्रास कम हुआ है या सुख बढ़ा है। कारण उसमें आदमी अपने

लिए चाहता है और इसमें दूसरे के साथ के अपने सम्बन्ध की स्निग्धता का विचार नहीं रखता है। अपने अधिकारों के पीछे दूसरे के अधिकार का ध्यान नहीं रखता है, यानी अधिकार की धारणा में कर्तव्य की भावना को डुबो देता है।

दूसरी तरफ वह संस्कृति है जो बल कर्तव्य पर देती है। जिसमें आदमी की निजी उन्नति दूसरे से विरोधी नहीं होती। ऐसे यह सामाजिक और सार्वजनिक होती है। व्यष्टि के ऐसे संस्कार में ही समष्टि का सुख हो सकता है।

आज जबकि राजनीति का दूसरे शब्दों में अधिकारपरायणता का भाव सबके मनों में छाया हुआ है, तब आवश्यक है कि कोई आवाज उठती, जो इस मरीचिका से आदमी का उद्धार करती। आदमी यों अपने से दूर चला जाता है और खुद अपने लिए अजनबी-सा हो जाता है। लेकिन जैसे इंजिल में लिखा है—'आदमी सारी दुनियां को भी पा जाए तो उससे क्या होता है अगर वह अपना आपा खो बैठे।' मनुष्य जाति कुछ ऐसे ही संकट में है। दुनियां को तो उसने बहुत सारा पा लिया है, लेकिन अपने में वह खोई-सी लगती है। सच है कि उसके अन्तर में एक मन्थन-सा मचा है। मानव-जाति के विचारक और चिन्तक लोग सब कहीं चिन्तित हैं और पाना चाह रहे हैं कि चूक कहां है? हाल की प्रगति जहां हमें डाल गई है, वह तो गड्ढा है, स्वर्ग नहीं, नरक है। उसमें हर घड़ी युद्ध के आ फटने की विभीषिका छाई रहती है। आदमी व्यस्त रहता है, लेकिन त्रस्त भी रहता है। विचारक मानो फिर से खोज करके पा रहे हैं कि उनके और उनकी प्रगति के आधार में सही आदर्श नहीं थे और सही मूल्य नहीं थे। गलती जड़ की थी और सुधार को भी जड़ में ही होना है। चलती सभ्यता के लहलहाते पत्ते अब भी चाहे ऊपर से मोहक लगते हों, पर तना गल चुका है और सभ्यता का सारा महावृक्ष ढहने वाला है, कारण जड़ें उसकी मानव सत्य की गहराई में से अपनी खुराक नहीं खींच रही हैं। वे उससे अलग और विच्छिन्न हैं।

आवश्यक है कि सामाजिक और सार्वजनिक—जैसे कि वैयक्तिक जीवन को मूल में उस सत्य से जोड़ा जाए जो सार्वकालिक और सार्वदेशिक है। जो यहां वहां बदलता नहीं हो, जो मानवता को एक मानता हो और उसके सामुदायिक

या श्रेणी-बद्ध विग्रह को अनिवार्य धर्मरूप मानता हो, जो इस तरह मानव के परस्पर संघर्ष की जगह उसके आपसी सहयोग को आधार देता हो, जो स्पर्धा की जगह स्नेह का संचार करता हो।

मेरा मानना है कि मनुष्य की अन्तरात्मा में यह आलोड़न गम्भीरता से चल रहा है। यह भी मेरा विश्वास है कि इसमें से एक ऐसी उत्क्रान्ति को जन्म मिलेगा, जिसके आगे इतिहास में प्रसिद्ध होने वाली राजनैतिक क्रान्तियां निस्सार जान पड़ेंगी। राष्ट्रीय सरकारों की उथल-पुथल का महत्त्व उसके सामने फीका रह जाएगा।

हर देश के गम्भीर विचारशील लोगों में इस इष्ट क्रान्ति के तत्त्व उपज रहे हैं और कोई नहीं कह सकता कि कब वे जुटकर, एक होकर एक नया प्रकाश जगत को देने में समर्थ हो जायेंगे।

अणुव्रत-आन्दोलन भी मुझे उस दिशा का एक प्रयत्न प्रतीत होता है। उसके प्रतिष्ठाता और संचालक में तेज है और वेग है। संगठन की उनमें क्षमता है। न्यस्त स्वार्थ भी उनके पास नहीं है। अनुयायियों की काफी संख्या उनके पीछे है। इस तरह यह आन्दोलन ध्यान खींचता और आशा बंधाता है। अनुयायियों का समुदाय अपने में जितना शुद्ध और कर्तव्यशील होगा, उतना ही आन्दोलन चमकेगा। सबसे बड़ी कसौटी उस समूह की विसर्जनशीलता है। राजनैतिक दल शक्ति के प्रतीक इसीलिए नहीं होते कि उनमें विसर्जन-शीलता का यह गुण नहीं होता। उनमें आग्रह और आहरण होता है। वे देने से ज्यादा खींचते हैं। आरम्भिक धर्म ऐसे ही विसर्जनशील समूह को लेकर चमके थे। पीछे वे सम्प्रदाय बन गए, जो धर्म को प्रकाशित उतना न करते थे, जितना उसे ढकने लग जाते थे। विसर्जन की प्रेरणा धार्मिकता का लक्षण है। उसके अभाव में समूह बल की जगह निर्बलता के प्रतीक हो जाते थे।

अणुव्रत-आन्दोलन मानव-भविष्य में हमारी आस्था को पुष्ट करने वाला है। उसकी गतिविधि के सम्बन्ध में मैं सदा उत्सुक और जिज्ञासु रहा हूँ। उसमें निर्माण की सम्भावनाएं हैं।

●

१९

अणुव्रत और नैतिक पुनरुत्थान

—श्री विष्णु प्रभाकर

आज के विज्ञान के युग में नैतिकता सापेक्ष है और वह इसलिए कि विज्ञान स्वयं निरपेक्ष नहीं है। विज्ञान गति दे सकता है, लेकिन दिशा नहीं। उसमें शक्ति है, लेकिन विवेक नहीं। शक्ति की, गति की जीवन में अनिवार्यता है, पर उसकी सत्ता स्वतन्त्र नहीं है। उसकी अनिवार्यता किसी के सहारे है और वह सहारा है, आत्मबल का। यह एक अद्भुत व्यापार है। स्वतन्त्र यहां कुछ भी नहीं है। स्वयं स्वतन्त्रता नहीं। उस नारी की कहानी सब जानते हैं जिसने कहा था कि वह सड़क पर खाट बिछाकर सोने को स्वतन्त्र है। उत्तर देने वाले ने उत्तर दिया था कि बेशक वह ऐसा करने के लिए स्वतन्त्र है, लेकिन जिस तरह वह स्वतन्त्र है, उसी तरह मोटर वाला भी उस सड़क पर मोटर चलाने को स्वतन्त्र है, भले ही उसके इस व्यापार से नारी के प्राण संकट में पड़ जाएं।

यहीं से स्वतन्त्रता की निरपेक्षता समाप्त हो गई, लेकिन उसकी अनिवार्यता पर कोई आंच आई हो तो कोई बात नहीं। कहें तो इसी स्थिति को अहिंसा भी कहा जा सकता है। क्योंकि स्वच्छन्दता, आकांक्षा को खुला छोड़ना हिंसा है और संयम अर्थात् सावधानी, दूसरे का ध्यान रखना, अहिंसा है। व्रत इसी भावना में से उपजता है। व्रत के बिना संयम, सावधानी और दूसरे का ध्यान रखने की बात सम्भव ही नहीं हो सकती है। यह दूसरी बात है कि ये व्रत बाहरी शक्ति द्वारा आरोपित नहीं किये जा सकते। वे तभी कल्याणकारी हो सकते हैं। जब वे स्वतः स्फूर्त हों, क्योंकि तब वे आत्म-मन्थन में से उपजेंगे। आत्म-मन्थन आत्म-ज्ञान से ही सम्भव हो सकता है। इसलिए आत्म-ज्ञान के बिना कुछ नहीं है। विज्ञान भी उसके बिना पंगु है।

यही बात राजनीति के बारे में कही जा सकती है। उसमें नियम है, पर

उसके पीछे जो शक्ति है और वह स्पर्धा की शक्ति है अर्थात् शुद्ध हिंसा है क्योंकि जहां स्पर्धा है वहां संयम नहीं है। संयम नहीं तो आत्म-ज्ञान कैसा ? आत्म-ज्ञान नहीं तो दिशा कौन देगा ? फिर तो भटकना ही पड़ेगा। सो विज्ञान और राजनीति आज भटक ही रहे हैं। और चूंकि शक्ति दोनों के पास है, इसलिए दिशाहीन शक्ति अर्थात् असंयत शक्ति जो कुछ कर सकती है, वही आज हो रहा है। नैतिक अराजकता, स्पर्धा, हिंसा; कुछ भी कहिए खुलकर खेल रहे हैं।

दूसरे के लिए अपनी स्वतन्त्रता का आंशिक विसर्जन त्याग है। राजनीति का जन्म इसी त्याग के आधार पर हुआ था। लेकिन आज वही राजनीति विशुद्ध हिंसा बन गई है क्योंकि उसमें स्पर्धा का उदय हो गया है और वह इसलिए सम्भव हुआ है कि हमने त्याग को दूसरे के लिए मान लिया है, जबकि वह असल में अपने ही लिए है। क्योंकि अन्ततः जितना कुछ अच्छा-बुरा हम करते हैं, उसकी क्रिया के पीछे जो शक्ति होती है, वह अपनी ही सुरक्षा की भावना में से उपजती है। बेशक उसके परिणाम का प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है। यह स्वार्थ है, लेकिन यही स्वार्थ जब व्यापक बनता है, तब परमार्थ बन जाता है। स्वार्थ और परमार्थ की विभाजन-रेखा बहुत गहरी नहीं है, क्योंकि स्वार्थ से व्यक्ति कहीं मुक्त नहीं है। लेकिन जब वह अपने स्व को दूसरों के स्व में समा लेता है तो स्व और पर का एकीकरण हो जाता है। यह स्थिति तभी सम्भव हो सकती है, जब आत्म-ज्ञान और विज्ञान दोनों का समन्वय हो। प्रगति के लिए गति और दिशा दोनों की शर्त है।

लेकिन यह प्रश्न का अन्त नहीं है। विज्ञान और राजनीति और कहें तो अर्थनीति क्योंकि आज की राजनीति अन्ततः अर्थनीति ही है, इस हल को स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि आज जो असदाचार और अनैतिकता है, उसका मूल अभाव—भूख है। बात ठीक जान भी पड़ती है, क्योंकि हिंसा में मोह तो है ही भले ही वह पैसे से हो या किसी और प्रकार की सत्ता से। पैसे में बड़ी शक्ति है। विज्ञान ने उसकी शक्ति को और भी बढ़ाया है और मोह के कारण वह कुछ के हाथों में जाकर केन्द्रित हो गया है। इस मोह के पीछे

विज्ञान अर्थात् बुद्धि की शक्ति है। इस कारण कुछ सर्व सम्पन्न हैं और कुछ सर्वहारा। जब ऐसा है तो विशुद्ध हिंसा है, क्योंकि इसमें एक ओर घृणा है, मोह है, लोभ है और दूसरी ओर ईर्ष्या, प्रतिशोध तथा क्रोध। विरोध यहां तक नहीं है, वह आगे है और इसके निराकरण में है। यह स्थिति कैसे मिटे ? निरन्तर स्पर्धा से तो यह मिटेगी नहीं। सर्व सम्पन्न के नाश से भी इसका निराकरण नहीं होगा। इसके लिए तो जो सर्व सम्पन्न हैं, उन्हें केवल गति का ध्यान छोड़कर दिशा का सहारा लेना होगा। अर्थात् उन्हें स्वार्थ के लिए त्याग करना होगा। परमार्थ और त्याग में कुछ को दम्भ की भावना दिखाई देती है। उसका कारण जैसा कि पहले बता चुके हैं केवल यही है कि वह दूसरों के लिए समझ लिया जाता है। जब व्यक्ति यह समझ लेगा कि त्याग में उसी का भला है तो उसमें न दम्भ शेष रहेगा और न पीड़ा। क्योंकि तब न मोह रहेगा, न स्व की सुरक्षा का प्रश्न।

नैतिकता इस प्रकार 'स्व' अर्थात् 'मैं' के रूपान्तर पर निर्भर करती है। 'मैं' अलग कुछ नहीं है, जो कुछ है, वह मानव है। अणुव्रत-आन्दोलन का मुख्य आधार भी जहां तक हम समझ पाये हैं यही रूपान्तर है। वह आज के समाज में फैले भ्रष्टाचार को मनुष्य की बुद्धि को जागृत करके मिटाना चाहता है। वह बुद्धि को सही दिशा देने के लिए कुछ व्रतों का विधान करता है। अपने पर नियन्त्रण रखने की भावना जागृत करता है। व्रत क्या है, अलग-अलग उनका क्या मूल्य है, यह कुछ बहुत अर्थ नहीं रखता। तत्त्व की बात तो आत्म-ज्ञान द्वारा अपने पर नियन्त्रण रखने की है। वह भावना इस आन्दोलन के पीछे है, इसीलिए उसकी उपादेयता असंदिग्ध है।

लेकिन शर्त इस भावना को ग्रहण करने की है। इसके बिना हृदय-परिवर्तन एक स्वप्न, एक दम्भ बनकर रह जायेगा। आचार की श्रेष्ठता की पुकार नई नहीं है। युग-युग में नैतिकता और अनैतिकता में संघर्ष हुआ है। यही संघर्ष आज भी है और इस बात की घोषणा करता है कि मनुष्य ने इस भावना को ग्रहण नहीं किया। इसलिए इस आन्दोलन के संचालकों का भार और भी बढ़ जाता है कि नैतिकता जड़ न बन जाये, चेतनता उसकी जागृत रहे। वह

पकड़ समझने की शक्ति दे, गला घोंटने की नहीं। क्योंकि विधि-विधानों का बाहुल्य और जटिलता उसी उद्देश्य की हत्या कर देते हैं, जिसके लिए उनका जन्म होता है। ऐसा होगा तभी इसके संचालक आचार्य श्री तुलसी के शब्दों में 'अणुव्रती-संघ मानव की अन्तर-वृत्तियों को मांजने में बद्ध लक्ष्य हो सकेगा'। उनका यह स्वप्न कि 'अणुव्रत की नींव पर अहिंसक समाज की रचना तो बहुत सम्भव है' निश्चय ही पूरा हो सकता है, पर तभी जब यह शर्त पूरी हो। नहीं तो नैतिकता क्या है और क्या नहीं है, इसी जाल में फंसकर रह जायेंगे। सच बोलो या झूठ मत बोलो यह कहना ठीक है, पर इसके साथ इस बात को भी हम न भुलायें कि ऐसा करना है कितना कठिन। व्रत साध्य नहीं है, साधन है। समाज-व्यवस्था का परिवर्तन अनिवार्य न हो, आवश्यक अवश्य है।

आज के भ्रष्टाचार से पीड़ित युग में अणुव्रत-आन्दोलन का स्वर मरणासन्न मानव के मुख में अमृत डालने जैसा है। एक ओर जहां अणुबम के पीछे मनुष्य की बुद्धि विश्व को समूल नष्ट कर देने की धमकी दे रही है, वहीं अणुव्रत-आन्दोलन के पीछे मनुष्य का विवेक मानवता की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो उठा है। भले ही विवेक का यह स्वर अभी क्षीण हो, पर उसका होना ही आशाप्रद भविष्य का सूचक है।

२०

अणुव्रत-आन्दोलन : एक अध्ययन

—श्री रामगोपाल विद्यालंकार
तात्कालिक सम्पादक, नवभारत टाइम्स

लगभग चार वर्ष से हमारे देश में अणुव्रत-आन्दोलन की चर्चा चल रही है। इस आन्दोलन की प्रशंसा देश के नेताओं, विचारकों और समाचार पत्रों ने तो की ही है, विदेशों के भी कुछ विचारकों और समाचार पत्रों ने इस आन्दोलन को मानव-समाज के लिए हितकारक बतलाया है।

इतना होने पर भी हमारे देश के अनेक व्यक्ति और वर्ग ऐसे हैं, जो इस आन्दोलन को सन्देह अथवा उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। जो लोग ऐसा करते हैं, उनके वैसा करने का कारण प्रायः अज्ञान और संकीर्णता पर आधारित है। उन्होंने या तो यह भली भांति समझा ही नहीं कि अणुव्रत है क्या और या इस आन्दोलन को एक सम्प्रदाय विशेष के आचार्य, मुनियों तथा साधुओं द्वारा प्रारम्भ किया गया जानकर उसे उपेक्षा और सन्देह की दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया।

अतः यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि यह आन्दोलन है क्या और इसे चलाने वालों का इसे चलाने के मूल में उद्देश्य क्या है? केवल किसी धर्म विशेष अथवा सम्प्रदाय विशेष से सम्बद्ध होने के कारण किसी वस्तु को अग्राह्य मान कर उसकी उपेक्षा कर देने की प्रवृत्ति बुद्धि-संगत तो है ही नहीं, आत्मघातक भी है।

सत्य-भाषण आदि सदाचार के ऐसे अंग हैं, जो सभी धर्मों में सम्मिलित हैं और जिनका विरोध अधार्मिक मनुष्य भी नहीं कर सकता। परन्तु यदि कोई व्यक्ति इन सर्वसम्मत और सर्वसम्मानित आचारों के उपदेश की ओर से अपने कान केवल इस कारण मूंदने लगे कि उसे, उसके धर्म अथवा सम्प्रदाय से भिन्न

धर्म या सम्प्रदाय का कोई उपदेशक या गुरु कर रहा है तो वह अपनी ही हानि करेगा; उस गुरु की या उपदेशक की या उसके धर्म या सम्प्रदाय की नहीं। कोई किसी सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्प की ओर से अपनी आंखें तथा नाक केवल इस कारण नहीं मोड़ लेता कि वह पराये बगीचे में खिल रहा है। हम पौष्टिक तथा स्वास्थ्यवर्धक अन्न का केवल इस कारण परित्याग नहीं कर देते कि वह हमारे खेत में उत्पन्न नहीं हुआ। पुरानी कहावत हैं, 'बालादपि ग्रहीतव्यं युक्तमुक्त मनीषिभिः'।

अणुव्रत-आन्दोलन का आरम्भ लगभग चार वर्ष पूर्व श्वेताम्बर जैनधर्म के अन्तर्गत तेरापंथी सम्प्रदाय के आचार्य श्री तुलसी ने किया था और इसमें उनका उद्देश्य तेरापंथी सम्प्रदाय का विस्तार करना नहीं, अपितु जाति, वर्ण, देश और धर्म का भेद-भाव न रखते हुए मानवमात्र को संयम-पथ की ओर आकृष्ट करना था। इस आन्दोलन की ओर जैनेतर सज्जनों के भी बहुसंख्या में आकृष्ट होने का प्रधान कारण यही है कि इसमें प्रतिपादित आचारों का सम्बन्ध धर्म-विशेष या सम्प्रदाय-विशेष से न होकर मानवमात्र के कल्याण से है।

कोई भी मनुष्य जब किसी कार्य का आरम्भ करता है, तब स्वभावतः और अनिवार्य रुपेण अपने ही साधनों से करता है। पीछे उसकी सफलता अथवा उस कार्य के गुणों से आकृष्ट होकर अन्य लोग भी उसके सहायक बन जाते हैं। इसी प्रकार तेरापंथ के आचार्य श्री तुलसी ने भी स्वभावतः इस व्रत का उपदेश पहले-पहल अपने ही शिष्यों को किया और अपने ही शिष्यों द्वारा उसका प्रचार करवाया। पीछे जैनेतर सज्जन भी उधर आकृष्ट हो गये।

अणुव्रत में जिन आचारों का पालन करने की प्रतिज्ञा व्रती लोगों से लिवाई जाती है, वे सब हिन्दू अथवा वैदिक धर्म में भी 'यम' नाम से अज्ञात काल से प्रचलित हैं—'सत्याऽहिंसाऽस्तेय ब्रह्मचर्याऽपरिग्रहा यमा'। इन्हीं पांच आचारों के पालन की प्रतिज्ञा अणुव्रतियों से विभिन्न शब्दों में करवाई जाती है। भेद केवल इतना है कि ऊपर उद्धृत सूत्र-वाक्य में इन पांचों आधारों का निर्देश सूत्र-मात्र रूप में कर दिया गया है और अणुव्रत की प्रतिज्ञाओं की भाषा आज के लोक-व्यवहार को देखकर उसको सुधारने की आवश्यकताओं के अनुसार

बनाई गई है।

अणुव्रत का सम्बन्ध केवल तेरापंथ से ही नहीं है, यह अनेक घटनाओं से स्पष्ट हो सकता है। आचार्य श्री तुलसी ने जो उपदेश और जिन आचरणों का प्रचार 'अणुव्रत' के नाम से आरम्भ किया, वही उपदेश और उन्हीं विचारों का प्रचार, लगभग उसी समय महात्मा गांधी के शिष्य विनोबा भावे ने 'सर्वोदय' नाम से किया। 'सर्वोदय आन्दोलन' का सम्बन्ध विनोबा भावे के साथ जोड़ा जाता है। परन्तु वस्तुतः उसके विकास में गांधीजी के एक अन्य शिष्य स्व० मश्रूवाला ने भी उतना ही योग दिया था, यह बात स्वयं विनोबा भावे भी मानते हैं।

ऊपर पांचों नियमों का सूचक वाक्य उद्धृत करके तो यह बतलाया ही है कि अणुव्रतों का मूल हिन्दूधर्म में भी है,। अन्य भी अनेक वाक्य और श्लोक आदि इस विचार की पुष्टि में दिये जा सकते हैं। एक श्लोक है—'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेय शौच मिन्द्रियनिग्रहः, धी विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धम लक्षणम्'। पांच यमों के अतिरिक्त 'शौच-संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः' वाक्य में जो नियम गिनाये गये हैं, वे भी यमों की साधना में सहायता के लिए ही हैं।

अब तक जिस प्रकार यह बतलाया गया कि अणुव्रतों का सम्बन्ध केवल तेरापंथ से नहीं, उसी प्रकार हमारा सुझाव है कि इस आन्दोलन के विस्तार में यदि कुछ जैनेतर साधु और संन्यासी भी सहायक हो जाएं तो इसका विस्तार तो शीघ्र होगा ही, जो लोग इधर संकीर्णतावश आकृष्ट नहीं होते, उनके संशय और संकीर्णता के भाव भी दूर हो जायेंगे। निःसन्देह इस सुझाव को क्रियान्वित करने में अनेक व्यावहारिक कठिनाइयां हैं, परन्तु उन्हें यत्न करके दूर किया जा सकता है। केवल कठिनाइयों के भय से कार्य का आरम्भ न करना दूरदर्शिता तो नहीं है।

"प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारब्ध मुत्तमजना न परित्यजन्ति।।"

●

२१

कथनी और करनी का प्रतीक—अणुव्रत-आन्दोलन

—श्री मातादीन भगेरिया,
सम्पादक, हिन्दी टाइम्स

आकाश की नीलिमा में जड़े चांद जैसे कोहिनूर और तारों के नगीने कैसी रात की रौनक बढ़ाकर उसका नूर निखार देंगे इसमें कहीं शक नहीं और यह भी सही है कि नक्षत्रमाला की दीपावली रानी विभावरी की तमिस्र राज्य परिधि से बाहर भी उस प्रकाश-राज्य की ऐसी कला है जैसी की निशा-महिषी की शासन-व्यवस्था में कहीं न मिले। मानो आने वाले मंगल प्रभात की प्रबुद्ध प्रभा का नमूना तन पर ओढ़े फिरते हैं ये तारे। आलोक के इन अग्रदूतों की सबसे बड़ी खासियत यह है कि प्रकाश-लोक की चर्चा तो ये करते हैं—कहते नहीं हैं। इतना सांगोपांग है इनका करना कि कहना खुदबखुद उसमें से चमकता रहता है। साधना-ज्योति से स्वयं को सुलगाकर प्रकाश का पैगाम देते हैं ये। उषा काल की अरुणाभा सबेरे की ताजगी, वन-शोभा की खिलती हुई सुमन-सज्जा, पंछियों का कलरव और जागरण की जिन्दगी मानो प्रकाश के शहीद सितारों के प्रिय परिणाम हैं।

इसी तरह हम कहना चाहेंगे कि आदर्शों के बड़े-बड़े स्वरूप, चरित्र-चर्चा की मुक्ता-माला और नैतिक उत्थान के बड़े शब्द करने की जरूरत रखते हैं। सत्य और अपरिग्रह महान् शब्द हैं ये—स्वर्ग से भी बड़े। लेकिन सवाल यह है कि इन्हें जीवन की सार्वजनिक भूमि पर उतारा कैसे जाये? तथागत बुद्ध हुए, महावीर स्वामी हुए और गांधीजी हुए। उन युग-पुरुषों ने कहा कम, किया ज्यादा और इसलिए जनता ने—लोक-भावना ने उनको लक्ष्य के स्वर्ण-सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया और उनकी अर्चना की। आज भी इन्सानियत उन पुण्य-पुरुषों की स्मृति में कृतज्ञता का अर्घ्य चढ़ा रही है। इसमें शक नहीं कि महान् सिद्धान्तों की अमृतमयी खुश्बू से भरे महान् शब्दों का इतिहास बहुत

चाहिए—सत्य के स्फुलिंग चाहियें। ऋषि-परिपाटी और महावीर कुल के आचार्य श्री तुलसी जैसे भट्ट शिष्यों को सत्य-चर्या का विशुद्ध स्टर्लिंग चाहिए। युग का कन्धा पकड़कर पूरा मोड़ दे सकने की क्षमता रखने वाले सत्य और अपरिग्रह जैसे सिद्धान्तों को जन-जन तक पहुंचा देने के लिए कितना अनवरत अध्यवसाय, कितनी अविरल तपस्या, कितनी निर्माण-क्रान्ति और कितना हिमालय जैसा धैर्य चाहिए, इसे बताने की जरूरत नहीं।

जोधपुर के अणुव्रत-सम्मेलन में हमने आचार्य श्री का वह महासन्देश सुना, जिसमें उन्होंने अणुव्रतियों को अभय का महासन्देश दिया। कौन हो सकता है निर्भय ? वही जो सब तरह के अपराध से शून्य हो, जो लोभ व कामजीत होकर सब तरह के आकर्षक लालचों को पराभूत कर सके और जिसे पार के मदिर नृत्य लुभा न सके। अभय वही हो सकता है जो आनन्द और व्रत का माने ज्ञानाम्बुधि के विराट नीरधि का एक हिस्सा खुद हो चुका हो। अणु 'स्व' की समस्त सीमाओं को तोड़कर अनन्त ब्रह्माण्ड का भाग कैसे हो ? कहने से नहीं लगातार करने से अभय के उस आध्यात्मिक स्वरूप की बात जाने दीजिये अगर अपने को अणुव्रती कहने वाला प्रत्येक व्यक्ति इतना भी करे कि उसे सरकारी कानून का डर न रहे, वह रिश्वत न दे और न ले, चोरबाजारी न करे, अनुचित रूप से धनोपार्जन न करे तथा शासन के नैतिक कोड का ईमानदारी से पालन करता रहे तो भी बहुत बड़ा काम हो। किन्तु यहां भी प्रश्न करने का है। गांधीजी ने इसी तरह के स्वेच्छा से बने सत्याग्रहियों की कल्पना की थी।

आचार्य श्री स्वयं कतेह हैं कि उन्हें संख्या का मोह नहीं। वे क्वालिटी चाहते हैं। सोना और सौ टंच का सोना। क्या हम आशा करें कि अणुव्रती अपने हृदयों की तिजोरियों में स्वर्ण-मणि-मुक्ता के बजाय अणुव्रती संघ के नियमों की स्वर्गीय रत्न-राशि को करने की लड़ियों में पिरोकर सजाना शुरू करेंगे ? आचार्य श्री अपने पथ पर बढ़े जा रहे हैं, रुकना उनका स्वभाव नहीं, थकना उन्होंने जाना नहीं। उनकी मंजिल निश्चित है, मार्ग स्पष्ट है, कहीं दुविधा

नहीं और न संशय। सभी चाहेंगे कि आचार्य श्री द्वारा शुरू किया गया लोक-हिताय प्रयोग सफल हो—इस महायज्ञ में सब अपना-अपना योग दें। मानवता परीक्षण पर परीक्षण किये जा रही हैं। शायद इस तरह के नैतिक महायज्ञ शोषण और विषमता की समाप्ति के बाद के परिच्छेद हैं। आचार्य श्री जैसे व्यक्तित्व आने वाले युग के प्रतीक हैं।

२२

अणुव्रत और भूदान

—सुश्री सुधारानी मोहिनी

अणुव्रत और भूदान आन्दोलन दोनों की क्रान्तिकारी विचारधारायें अपने-अपने दृष्टिकोण से एक ही सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति का प्रतिपादन कर रही हैं। दोनों का मार्ग और दोनों की साधना व दोनों की शैली एक ही मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है। दोनों मानवीय आन्तरिक विकास की गाड़ी को आगे बढ़ाने में रेल की समानान्तर पटरी के समान द्रुत गति से सहयोग दे रही हैं। अणुव्रत बुद्धि के द्वारा हृदय के परिष्कार पर बल देता है तो भूदानयज्ञ हृदय में स्नेह की सरिता प्रवाहित करके मानव के अविच्छिन्न सम्बन्धों को दृढ़ करने के सफल प्रयास में है।

अणुव्रत और भूदान दोनों पर विचार करने से ज्ञात हो जायेगा कि अणुव्रत का अवतरण हो रहा है, तो भूदान का आरोहण। एक प्रकार कल्पना के आकाश से नीचे उतर रहा है। अव्यक्त से प्रस्फुटित होकर जब वितरित विश्व में व्याप्त स्वार्थमय अन्धकार के विनाश के लिए आन्तरिक मानवीय दिव्याकाश से ऐसे ही कितने प्रदीप्त प्रकाशों का आविर्भाव हुआ करेगा और उन सभी नवीन प्रकाशों के सम्मिलन से जो एक विश्वव्यापी, असीमित दिव्य-प्रकाश संसार के कण-कण में, प्रकृति के अणु-अणु में व्याप्त हो जाएगा, तो सारे संसार से दुःख, मुसीबत, छल-कपट, धोखा, मक्कारी, फरेब का राज्य समाप्त होकर सुख-शान्ति और आनन्द का वातावरण उत्पन्न हो जाएगा। अणुव्रत और भूदान दोनों ही मानव की प्रसुप्त शक्तियों को स्पर्श करते हैं। दोनों का ही मूलाधार भौतिक न होकर अभौतिक है। दोनों की एक सुनिश्चित कल्पना और सुदृढ़ आस्था है,। दोनों सत्य, अहिंसा, प्रेम को मानव के विकास का एकमात्र साधन स्वीकार करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि एक भौतिक-स्तर

से अभौतिकी की ओर और दूसरा अभौतिकी सीमा से व्यावहारिक भौतिकता की ओर बढ़ रहा है। मानवीय विकास के लिए इन दोनों गतियों का अवतरण और आरोहण अवश्यम्भावी है।

जब तक इन दोनों तरह की गतियों का समन्वय होकर मानवी विकास की परम्परा सम्पादित नहीं की जाएगी, तब तक उसका विकास एकांगी ही रहेगा। चाहे व्यक्ति का व्यक्तिगत सीमा के भीतर असीमित विकास हो अथवा समाज का विस्तृत क्षेत्र में सीमित विकास। दोनों की साधना सीमित व्यक्तित्व को असीमित शक्ति से योग की ओर ही ले जाती है। विकास की परम्परा को स्वीकार किये बिना साधना के द्वारा विश्व की व उसके अवयवों के विकास की सम्भावना ही नहीं रह जाती और जब हम एक बार विकास की परम्परा स्वीकार कर लेते हैं तो फिर हमें विकास के द्वारा देवत्व और स्वर्ग के अवतरण की कल्पना के इस पृथ्वी पर साकार होने में कोई सन्देह नहीं रह जाता है। कुछ लोगों का यह भ्रम है कि 'विकास के साथ ह्रास भी तो लगा रहेगा' इस स्थल पर कोई महत्त्व नहीं रखता। वास्तव में विकास के साथ ह्रास लगा रहने वाला सिद्धान्त भ्रमशील है। विकास से जो कभी-कभी ह्रास के चिन्ह दृष्टिगोचर होते हैं, वे विकास में रह गई किसी कमी के परिणाम मात्र हैं। विकास का अभाव ही ह्रास है, न कि विकास के अतिरिक्त उसकी कोई गति है। स्थायित्व की संज्ञा का नाम ही रुका हुआ विकास है। अणुव्रत और भूदानयज्ञ इसी विकास की उत्तरोत्तर वृद्धि के सिद्धान्तों को जीवन में पालन करने के लिए सतत प्रयत्नशील हैं, चाहे दोनों भिन्न-भिन्न संस्थाओं के द्वारा संचालित हो रहे हों, पर वास्तव में दोनों एक दूसरे से अभिन्न हैं। यह बात प्रत्येक साधक के अनुभव में आती है।

अणुव्रत और भूदान दोनों एक ही सद्वस्तु के दो अभिन्न पार्श्व हैं। दोनों का उद्देश्य शोषणविहीन समाज की स्थापना करना है। दोनों आन्दोलनों की विचारधारा के व्यक्तियों के साथ उसके प्रवर्तकों का महान् आत्मिक त्याग सम्मिलित है। दोनों का आधार अधिकतम त्याग और पवित्रता तथा व्रतोपासनायें हैं। दोनों भौतिक स्मृति को जीवन में व्यक्तिगत रूप से स्वीकार करने के पक्ष में

नहीं हैं; अपितु विश्व को अधिक से अधिक भौतिक सुविधाओं से समृद्ध देखना चाहते हैं। सादा जीवन और उच्च विचार; यही दो सिद्धान्त इन आन्दोलनों के प्राण हैं। मानस को शुद्ध व पवित्र करने के लिये तिरस्कृत व्यक्तियों के प्रति सहानुभूति और प्रेम की सद्भावनाओं का उत्पन्न होना और अपनी स्नेहमयी धारा में उन्हें निमग्न कर लेने की प्रबल उत्कण्ठा संजोये रखना अति आवश्यक है। घृणा का उपचार घृणा करने से या तिरस्कृत का उपचार तिरस्कार अथवा बहिष्कार करने से नहीं होगा। उनके साथ हमें अपने हृदय की अमृत-मयीधारा को सम्मिलित करना होगा। हमसे जो घृणा करते हैं, उन्हें भी हमें अपने हृदय का स्नेह देना होगा। पूंजीवाद और भौतिक साम्यवाद दोनों ही मानवी विकास में बाधक हैं। साम्ययोग, प्रेमयोग और अहिंसाव्रत ही मानवी विकास के मार्ग हैं। यद्यपि मनुष्य जाति को विकास की कठिनतम घाटियों और विकटतर पहाड़ियों में से होकर गुजरना पड़ेगा, पर साधकों को कमर कस कर हर प्रकार का मूल्य चुकाने के लिए तैयार रहना होगा।

हम हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में विश्वास रखते हैं। हम किसी ऐसे स्थायी अवगुण का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते, जिसको गुण की प्रक्रिया में रूपान्तरित न किया जा सके। विश्व के वर्तमान संघर्ष में विचार-भेद ही मुख्य कारण है। अगर हम आध्यात्मिक विचारधारा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान समाज-कल्याण के प्रति व मानव-विकास की साधना के प्रति आकर्षित कर सकें तो कोई कारण नहीं कि आज का आतंकवाद समूल नष्ट न हो जाये, आतंक और भय से आक्रान्त वातावरण विश्व को शान्ति सन्देश न दे सके। आध्यात्मिक विचारधारा का जो शंखनाद अणुव्रत व भूदान ने फूंका है, उससे नैतिकता का विकास होगा। आज देश के हर विचारवान् को इस क्षेत्र में आगे आकर कार्य करने की अत्यन्त आवश्यकता है। हम हर ऐसे व्यक्ति का जो इस क्षेत्र में आना चाहें, हृदय से, आत्मा से स्वागत करते हैं।

●

२३

एक महत्त्वपूर्ण आन्दोलन

—श्री शंकरलाल वर्मा

तात्कालीन सह-सम्पादक, हिन्दुस्तान

योगिराज श्रीकृष्ण ने व्यामोहयुक्त अर्जुन को उद्‌बोधन करते हुए एक स्थान पर कहा था—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

उनके इस कथन की देश-विदेश के इतिहास से पग-पग पर पुष्टि होती है। बुद्ध, महावीर, शंकर, मुहम्मद, ईसा, स्वामी रामदास, गुरु नानक, स्वामी दयानन्द सरस्वती और अपनी आंखों के सामने महात्मा गांधी इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इनके अवतरण काल में देश में व्याप्त विकृत परिस्थितियों और उनके निवारण के लिए हुए इनके कार्यकलाप इसकी यथार्थता के प्रकट प्रतीक हैं। इससे भी बढ़कर है इनके अवतरण की शृङ्खला। हिंसा के भयंकर व्यापार के समय बुद्ध और महावीर का, नास्तिकता के प्रवाह के समय में शंकर का, सामाजिक पतन की परिसीमा पर मुहम्मद का, घृणा के साम्राज्यकाल में ईसा का, यवनों के पराकष्ठा काल में स्वामी रामदास और गुरु नानक का, भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति के भयंकर आक्रमणकाल में ऋषि दयानन्द का और दासता के अभिशापजन्य चतुर्दिक पतन-काल में महात्मा गांधी का अवतरण ऐसी घटनाएं हैं, जो प्रकृति की सुयोजित योजना का अंग प्रतीत होती हैं।

महापुरुषों की शृङ्खला की कड़ी के रूप में आज एक ओर आचार्य विनोबा और दूसरी ओर जैनाचार्य तुलसी हमारे सामने विद्यमान हैं। महात्मा गांधी ने

अपनी तपस्या एवं सत्य और अहिंसा के बल से देश को दासता के बन्धन से मुक्त कराया, किन्तु शोषण और दरिद्रता के अभिशाप से मुक्ति दिलाकर रामराज्य स्थापित करने की अपनी कल्पना को वे साकार रूप नहीं दे पाये। उनके अधूरे छूटे इस काम को आचार्य विनोबा ने भूदान के रूप में अपने हाथ में लेकर उसकी पूर्ति करने के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी है। जिस समय महात्मा गांधी ने चुटकी भर मिट्टी से नमक बनाकर शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता को चुनौती दी थी, तो लोगों ने इसका मजाक उड़ाया था। लेकिन हम आज देख रहे हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य यहां से गायब है और मजाक उड़ाने वाले स्वयं मजाक के शिकार बन गये हैं। इसी प्रकार आचार्य विनोबा के भूदान की कल्पना को लोगों ने एक सर्वथा अव्यवहारिक कल्पना की संज्ञा दी थी, लेकिन वह अव्यवहारिक कल्पना आज जिस प्रकार साकार रूप धारण कर रही है और देश का सारा वातावरण आज भूदान के साथ ही सम्पत्तिदान, कूप दान और श्रमदान आदि से जिस प्रकार व्याप्त हो रहा है, उससे उनके लक्ष्य की पूर्ति में शंका की कोई गुंजायश नहीं रह जाती।

दूसरी ओर इसी के समानान्तर आचार्य श्री तुलसी का नैतिक उत्थान का आन्दोलन है। यद्यपि हम आजाद हो गये हैं, किन्तु सदियों की दासता और उससे भी बढ़कर पिछले महायुद्ध जन्य परिस्थितियों से देश में अनैतिकता का इतना जोर बढ़ गया है कि कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जो इससे बचा हो। आज लोगों के लिए पैसा ही परमेश्वर हो गया है। उसके लिए जघन्य से जघन्य अपराध करना एक साधारण-सी बात हो गई है। सरकारी दफ्तरों में मामूली से मामूली काम बिना रिश्वत दिये पूरा नहीं हो पाता। लेने वालों के मन में तो इसका कोई भय है ही नहीं। देने वाले भी इसके अभ्यासी के समान एक सामान्य चीज मानने लग गये हैं और हमारी सरकार के भ्रष्टाचार निवारण के प्रयत्नों को सफलता नहीं मिल पा रही है। जो बात सरकारी विधानों में है, वही सामान्य व्यापार-व्यवसाय में है। देश में किसी भी चीज का शुद्ध रूप में मिलना असम्भव प्रायः हो गया है। और तो और औषध जैसी चीजों में भी मिलावट कर लोगों के जीवन के साथ खिलवाड़ करने में उनको हिचकिचाहट

नहीं होती। पहले प्रायः शहर ही बुराइयों का केन्द्र माने जाते थे, किन्तु अब से गांव भी इनसे अछूते नहीं बचे हैं। सीधी साधी ग्रामीण महिलाएं तक जमाये हुए तेल (वनस्पति) को दूध के साथ जमाकर उसे शुद्ध घी के रूप में परिवर्तित करने में इतनी निपुण हो गई हैं कि उस घी का शुद्ध-अशुद्ध की जांच के लिए बनी मशीनों की पकड़ में आना भी कठिन हो जाता है। इस सर्वथा अनैतिक व्यापार को वे इतने निःशंक भाव से करती हैं कि उसमें निहित अनैकिकता का उनके हृदय को जरा भी आभास नहीं होता। यह अवस्था आज सभी क्षेत्रों में है और हालत भी अत्यन्त चिन्तनीय है।

जब तक किसी व्यक्ति में बुराई को बुराई मानने की चेतना बनी रहती है, तब तक उससे यह आशा रहती है कि अपनी कमजोरी पर हावी होते ही उस बुराई से वह अपना पीछा छुड़ा लेगा। लेकिन जब असद् को असद् मानने की भावना ही शून्य हो जाये तो वह एक भयावह स्थिति हो जाती है। उसमें उसके उद्धार की सम्भावना नष्ट प्रायः हो जाती है। दुर्भाग्य से नैतिकता की दृष्टि से आज हमारे समाज की बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति है। कोई भी राष्ट्र, जिसकी नैतिक आधार शिला कमजोर हो अन्य क्षेत्रों में कितनी भी उन्नति करने पर अन्ततः वह टिक नहीं सकता। ऐसी दशा में देश में नैतिकता की भावना जागृत कर इसको अपने जीवन में व्यवहृत करने के लिए आरम्भ किए गए आचार्य श्री तुलसी के इस अणुव्रत-आन्दोलन का भारी महत्त्व है। आचार्य श्री के बहु-संख्यक अनुयायी देश भर में फैलकर विविध क्षेत्रों में इस आन्दोलन का प्रचार कर रहे हैं और उसमे उन्हें काफी सफलता भी मिल रही बताई जाती है, किन्तु वह प्रचार अब भी बहुत सीमित है। अपने देश के नैतिक उत्थान में विश्वास रखने वाले देश के प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति को बिना किसी जाति एवं धर्म के भेद भाव के इस आन्दोलन को अपनाकर उसकी पूर्ति में योग देना अपना पुनीत कर्तव्य समझना चाहिए, तभी वह व्यापक रूप धारण कर सकेगा और तभी उसकी लक्ष्य-सिद्धि सम्भव हो सकेगी।

●

२४

सामाजिक प्रगति में व्रतों का महत्त्व

—श्री हरिभाऊ उपाध्याय

वित्तमंत्री, राजस्थान

आज देश में सबसे बड़ी आवश्यकता दो बातों की है। सर्वप्रथम तो प्रत्येक नागरिक के जीवन-स्तर तथा समाज में फैली आर्थिक विषमता में समानता लाने की और दूसरी—मनुष्य और समाज का निर्माण नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर करने की। आज के युग में बहुत से लोगों की यह मान्यता है कि समाज की रचना को प्रभावित करने वाली अर्थ-शक्ति है और वह महान् है। इसलिए मानव जाति का इतिहास देखने से प्रतीत होता है कि मानव-को मोड़ने में आर्थिक शक्तियों ने बहुत भाग लिया है, किन्तु मानव के मूल में सुख की भावना प्रबल है और उसी की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। वास्तविक सुख अपने जीवन के सुख में नहीं। वह तो दूसरों की सुख-सेवा एवं साधना में निहित है। अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को छोड़कर दूसरों के हित साधन में ही मेरा हित है, यह समझने की जो मनोवृत्ति है, यही नैतिकता है।

दो व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्ध को स्थिर करने वाली प्रेरणा का नाम नीति है। नीति और नैतिकता दोनों ही समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्हीं की पूर्ति के लिए समाज में व्रतों का विकास हुआ है।

व्रत का अभिप्राय है कि हम किसी बुराई से दूर रहें और उसी के लिए व्रतों को अपने जीवन में अपनाते हैं। यह बात भी निर्विवाद सत्य है कि व्रतों एवं नियमों के बिना समाज का जीवन चल नहीं सकता। व्रतों के द्वारा हमारे जीवन की शुद्धि होती है। अणुव्रत आन्दोलन के व्रतों के आधार पर हम प्रतिमास तथा प्रति सप्ताह अपने जीवन के सम्बन्ध में विचार करें कि इन दिनों में हमारा जीवन कितना आगे बढ़ा है। व्रतों से हमारे जीवन में यदि

कोई प्रभाव नहीं पड़ता तो उस प्रकार के व्रत लेने से कोई लाभ नहीं। अनिच्छा अथवा लोक-लाज से लिए हुए व्रतों का भी जीवन में कोई लाभ नहीं होता। इसलिए व्रतों को अपनी इच्छा से ही ग्रहण करना चाहिए। दूसरों पर प्रभाव डालकर किसी से कोई कार्य पूरा कराना ही हिंसा है। इसी कारण हिंसा को बुरा मानते हैं। इसलिए सत्य और अहिंसा के आधार पर व्रतों को दृढ़ता से पालन करते हुए आगे बढ़ें। ये व्रत हमारी आत्मा के विकास के साथ-साथ समाज की भी उन्नति और प्रगति करते हैं; इसी भावना के साथ इन व्रतों को हम निभाएं।

आज के युग में भौतिकता चारों ओर फैल रही है। ऐसे समय में यदि धर्म का आदर्श ऊँचा नहीं रखा गया तो जीवन ठीक रूप में नहीं चल सकेगा। नैतिकता के माने हैं, व्यक्ति जिस तरह अपने सुख और स्वार्थ को सोचता है, दूसरे का भी सोचे। ऐसा होने से शोषण, उत्पीड़न आदि स्वतः मिट जाते हैं। स्वराज्य होने पर कई प्रकार के प्रलोभन भी हमारे सामने आए, नैतिक दृष्टि से खराबियां भी आईं; अणुव्रत-आन्दोलन की भावना यह है कि इन छोटे-छोटे व्रतों द्वारा इनका उन्मूलन किया जाए। दूसरे के सुख और स्वार्थ का ख्याल न करने की भावना हिंसा है। इसलिए व्यक्ति दूसरे के सुख और स्वार्थ को भी देखे। सचमुच जिस किसी महापुरुष के मन में यह कल्पना आई होगी, वास्तव में वह बड़ा महान् रहा होगा। कब आई, किसके आई, यह हम नहीं जानते। भगवान् महावीर उनमें से एक थे, जिन्होंने इसे आगे बढ़ाया। मैं जब अहिंसा का विचार करता हूं तो इससे बड़ा उपकृत होता हूं, पर जैन समाज और जैन धर्मियों ने अहिंसा का जो रूप अपनाया, वह अहिंसा महावीर की अहिंसा नहीं रही, उसमें जीव-दया का प्राधान्य रहा। महावीर की अहिंसा में निर्भयता का भाव था। मारने की जगह उसमें मरने का भाव अधिक था; क्योंकि वह केवल वीर की ही नहीं थी, महावीर की थी। बहुत बड़ा निडरपन उसके पीछे था। आज वह निर्भय भाव छिप-सा गया है। उसे प्रकट कर दीजिए। यह भावना जमाइये, समाज में जिन समस्याओं को मारकर हल करना चाहते हैं, जरूरत पड़े तो उसके लिए मर भी सकें। मैं इसे ही निर्भय कहता हूं। सत्य,

अपरिग्रह आदि व्रत इससे जुड़े हुए हैं। परिग्रह या धन, जो किसी के पास है, वास्तव में उस अकेले के द्वारा पैदा किया हुआ है, यह कदापि नहीं। उसमें तो न जाने समाज के कितने व्यक्तियों का परोक्ष-अपरोक्ष योग रहा है। इसलिए व्यक्ति के अकेले के परिश्रम का फल है ही नहीं। अपरिग्रह की साधना की तरफ भी व्यक्ति को ध्यान देना है। जिस तेजी से समाज का स्तर विषम और क्लेश-पूर्ण बनता जा रहा है, इससे लगता है, समाज कहीं भस्मीभूत न हो जाये। इससे बचने के लिए अपरिग्रह का सहारा लेना होगा। इस विषमता और असन्तुलन की वैतरणी को पार करने के लिए हिन्दू-शास्त्रों के रूपक के अनुसार अपरिग्रह गाय की पूंछ के समान है। यदि उसकी पूंछ को मजबूती से पकड़ लेंगे तो निश्चय ही उसका पार पा सकेंगे।

यह युग राजनैतिक जागृति और आर्थिक तथा सामाजिक समानता का युग है। जनतंत्र की भावना ज्यों-ज्यों बढ़ती और फैलती जा रही है त्यों-त्यों राज-तंत्र-युग के मूल्य बदलते जा रहे हैं और सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में अंतर पड़ता जा रहा है। पहले जहां जीवन के प्रायः प्रत्येक भाग में वर्गीकरण पर जोर दिया जाता था और उसके आधार पर समाज-रचना की गई थी, वहां अब वर्ग और भेद-विहीनता पर जोर दिया जाता है और योग्यता और ऊँच-नीचता पर नहीं बल्कि समता के आधार पर समाज-रचना की ओर प्रवृत्ति बढ़ रही है। पहले वस्तु थोड़े लोगों तक ही सीमित रहती थी तो उसका गुण और श्रेष्ठता पराकाष्ठा पर पहुँच जाती थी। जब बहुजन समाज में उसके विस्तार की ओर प्रवृत्ति होती है तो गुण योग्यता और श्रेष्ठता की ओर से ध्यान हट जाता है और विस्तार की तरफ चला जाता है। इस समय हमारे देश में ऐसा ही हो रहा है। बहुजन समाज को सुख, सुविधा पहुंचाने की धुन और सामाजिक एवं आर्थिक समता की ओर तीव्र गति से प्रयाण करने के कारण व्यक्तिगत तथा सामाजिक चरित्र की ओर ध्यान कम जा रहा है और हम देखते हैं कि इस सदी में हमारे देश और समाज का चरित्र-स्तर काफी नीचा हो गया है। इसकी ओर जिन देशों और धर्म के नेताओं का ध्यान है, उनमें आचार्य तुलसी का भी ऊँचा स्थान है। वे एक सम्प्रदाय के आचार्य हैं, फिर

अहिंसा प्रेमी, दृष्टिबिन्दु विशाल और सहानुभूति व्यापक है जो कि एक अहिंसा प्रेमी के लिए सर्वथा योग्य है। अणुव्रती संघ की स्थापना करके उन्होंने यह दिखला दिया है कि वे केवल जैन समाज के ही नहीं, बल्कि सारे हिन्दू समाज और मानव-समाज के हितैषी हैं। प्रवाह और हवा का रुख देखकर चलना और सस्ती वाहवाही लेना आसान है, मगर प्रवाह और हवा को अभीष्ट दिशा में मोड़ना महान व कठिन कार्य है। जो ऐसे कठिन कार्य करते हैं, वे ही युग-नेता होते और कहलाते हैं। आचार्य श्री में हम युग-नेता की झलक देख रहे हैं। उनका यह कार्य दूसरे सम्प्रदायों के आचार्य के लिए भी ध्यान देने योग्य है।

●

२५

अणुव्रत : समाज-शुद्धि का आन्दोलन

—श्री शोभालाल गुप्त

सह सम्पादक, हिन्दुस्तान

काल-प्रवाह के साथ समाज में अनेक बुराइयां प्रचलित हो जाती हैं। प्रत्येक युग में इन बुराइयों से समाज को मुक्त करने का प्रयत्न होता आया है। समाज संशोधन का यह कार्य निरन्तर चलते रहना चाहिए, अन्यथा समाज में विषमता, अव्यवस्था, अशान्ति और सड़न पैदा हो जायेगी; उसकी प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जायेगा।

समाज व्यक्तियों से मिलकर बनता है और इसलिए अगर समाज का संशोधन अभीष्ट हो तो उसकी शुरुआत व्यक्तियों से ही होनी चाहिए। व्यक्ति समाज में रहता है और प्रत्येक व्यक्ति का आचरण किसी न किसी रूप से समाज को प्रभावित करता है। व्यक्ति समाज में रहते हुए स्वेच्छाचारी जीवन नहीं बिता सकता। उसको अपना व्यक्तिगत आचरण इस प्रकार नियमित करना चाहिए, जिससे समाज का अनिष्ट न हो।

व्यक्ति और समाज अभिन्न हैं। एक दूसरे के हितों में वैर अथवा विरोध नहीं है। क्या व्यक्ति को समाज की चिन्ता में अपने को भूल जाना चाहिए, यह प्रश्न ही नहीं उठता। व्यक्ति का विकास वांछनीय है, किन्तु उसके लिए सामाजिक नियमों का पालन करना होगा। अनुकूल सामाजिक वातावरण में ही व्यक्ति का विकास सरलतापूर्वक सम्भव हो सकेगा। इसलिए व्यक्ति को आत्म-विकास के लिए भी सामाजिक वातावरण को अच्छा बनाने में योग देना चाहिए।

हमारे पूर्वजों ने गहरे चिन्तन और अनुशीलन के बाद मनुष्य के आचार के लिए कुछ मूलभूत नियम निर्धारित किये हैं। ये नियम भारतीय संस्कृति के

मूल आधार हैं। इस देश में सदियों से मनुष्य जाति को यह पाठ सिखाया जाता रहा है कि उसे अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पालन करना चाहिए। भारत की भूमि में जितने भी धर्म पनपे हैं, उन सबने इन मूलभूत सिद्धान्तों पर बल दिया है। उनका अनुसरण व्यक्ति और समाज दोनों के लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

किन्तु इन नियमों का पालन आसान नहीं है। यह खाण्डे की धार पर चलने जैसा है। अहिंसा का पालन करने वाला मनुष्य मात्र के प्रति ही नहीं, बल्कि संसार के सब जीवों के प्रति प्रेम और करुणा बरतेगा। वह राग और द्वेष से मुक्त होगा। सत्य बोलने से सांसारिक दृष्टि से हानि हो सकती है, यह समझ कर भी वह सत्य का परित्याग नहीं करेगा। वह दूसरे का धन हड़पने की चेष्टा नहीं करेगा। वह सांसारिक भोग-विलास को जीवन का परम लक्ष्य नहीं समझेगा, बल्कि संयम से काम लेगा। इन्द्रियों के वशीभूत न होकर उन्हें अपने वश में रखेगा, वह अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को सीमित रखेगा। धन-सम्पत्ति का एक जगह संचय दूसरी जगह अभाव की स्थिति उत्पन्न करता है। अमीरी और गरीबी का एक साथ अस्तित्व वर्तमान अशान्ति का मूल कारण है और उसे अपरिग्रह की भावना से ही शान्त किया जा सकता है। आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रह भी एक प्रकार से सामाजिक चोरी ही मानी जानी चाहिए। अगर समाज में इन नियमों पर चलने वाले लोग अधिक संख्या में हों तो इस पृथ्वी पर ही स्वर्ग उतर आ सकता है।

तेरापन्थ के आचार्य श्री तुलसीजी के सम्पर्क में आने का मुझे अवसर मिला है। उन्होंने अणुव्रत-आन्दोलन का सूत्रपात किया है, जिसे मैं समाज-संशोधन का ही एक रूप मानता हूं। उन्होंने अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरि-ग्रह—इन पांच मूलभूत सिद्धान्तों की आधारशिला पर अणुव्रत-आन्दोलन को खड़ा किया है। उसके अन्तर्गत उन्होंने कुछ ऐसे नियम निर्धारित किये हैं, जिनके परिपालन से समाज और व्यक्ति के जीवन में नैतिकता और सदाचार की वृद्धि होगी और राष्ट्र का गिरा हुआ चरित्र ऊंचा उठेगा।

आचार्य श्री तुलसीजी ने आज की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए

अणुव्रत के नियमों को व्यवहारोपयोगी बनाने की चेष्टा की है। इसलिए उन्होंने इन नियमों को अणुव्रत अर्थात् लघु नियमों का नाम दिया है। किन्तु अणु में शक्ति का कितना स्रोत भरा हुआ है, यह संसार जान चुका है। अणुव्रत दिखने में भले ही छोटे दिखाई दें, किन्तु उनमें मनुष्य के जीवन और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की असीम सम्भावनाएँ छिपी हैं। इसलिए अणुव्रत लघु हैं, यह समझकर किसी को उसका महत्त्व कम नहीं आंकना चाहिए।

अणुव्रत-आन्दोलन आज की अनेक सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करता है। आज व्यापारिक क्षेत्र में कितना असत्य, अनीति और भ्रष्टाचार प्रविष्ट हो गया है। ठीक मूल्य पर शुद्ध वस्तु मिलना दुर्लभ हो गया है। रिश्वतखोरी और चोरबाजारी का बोलबाला है। मृत्युभोज, दहेज, बाल और वृद्ध-विवाह जैसी अनिष्टकारी समाजिक कुरीतियां प्रचलित हैं। शराबखोरी, जुआबाजी, नशीली वस्तुओं का सेवन आदि दुर्व्यसन घर किये हुए हैं। अणुव्रत-आन्दोलन इन सब बुराइयों का निषेध करता है। वह छूआछूत का समर्थन नहीं करता और स्वदेशी का पोषक है। इन सबके लिए प्रत्येक समझदार आदमी इस आन्दोलन का समर्थन करेगा।

इस आन्दोलन ने अनेक व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित किया है। उन्होंने आर्थिक हानि उठाकर भी अणुव्रतों का पालन किया है। व्रत का अर्थ ही दृढ़ संकल्प होता है। जो लोग धर्म और नीति की सीधी राह पर चलने का संकल्प करते हैं, शुरू में भले ही उनकी संख्या थोड़ी हो सकती है, किन्तु उनका जीवन दूसरों के लिए प्रकाश का काम देता है। अन्त में उनकी श्रद्धा फलेगी-फूलेगी और यह दुनिया आज से अधिक अच्छी बनकर रहेगी।

२६

अरगुव्रत : आत्म विद्यालय का मुख्य द्वार

—श्री श्यामप्रकाश दीक्षित

सम्पादक, समाज

आज न केवल हमारा देश बल्कि सारा विश्व भौतिक सुखों की दौड़ में सत्य को बिलकुल भूलता जारहा है। व्रत हमारी भारतीय संस्कृति और परम्परा की वस्तु रही है। हमने सदा व्रत का सम्बन्ध आत्मा से माना है और उस आत्मिक संकल्प को पूरा करने के लिए बड़े से बड़े त्याग किए हैं। आज हमारी संस्कृति जीवित है और उसका सारे विश्व में मान है। विदेशों के विचारक जब उसकी अमरता के रहस्य को खोजते हैं तो उन्हें मूल में हमारे आत्मिक संकल्प की दृढ़ता ही मिलती है। आज परिस्थितिजन्य निराशा और भ्रामक सिद्धान्तों का प्रचार हमें कुछ समय के लिए ऐसा अनुभव करने के लिए बाध्य करता है कि हम दुर्बल हैं, विवश हैं, अतः आगे नहीं बढ़ सकते हैं। अणुव्रत हमें उस परिस्थिति में एक मार्ग दिखाता है, हमें बल और आशा प्रदान करता है, ताकि हम अपने संकल्पों को अधूरा न छोड़ें, बल्कि उनको पूरा करके जीवन के लक्ष्य पर पहुँचे।

अणुव्रत की बात करने पर साधारणतया लोग दो प्रकार के उत्तर देते हैं। उनका कहना होता है कि वे अणुव्रत के अधिकांश नियमों को अपने जीवन में उतार चुके हैं और उनके आचरण में किसी भी नियम की अवहेलना नहीं होती है। उनके जीवन श्लाघनीय हैं। हर एक को उनसे स्पर्धा करनी चाहिए, किन्तु व्रत के विचार से शून्य उनका जीवन एक ऐसे दुर्ग के समान है, जिसकी रक्षा के सभी साधन होते हुए परकोट न होने से जो न दुर्ग के श्रेणी में आ सकता है और न उन साधनों की रक्षा कर सकता है, जो उनके जीवन से भी अधिक मूल्य रखते हैं। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि संकल्प और व्रत

के बिना जीवन के आचार-विचार कभी भी बदल सकते हैं। कठोर व्रत की निष्ठा ही एक ऐसा कवच होता है, जो परिस्थितियों के झंझावात से हमारी रक्षा करता है। इसलिए अणुव्रत के नियमों को व्रत के रूप में ही पालन करना श्रेयस्कर होगा।

कुछ लोग इस प्रकार के भी मिलेंगे जो समझ बैठे हैं कि राजनीति में व्रती जीवन का मिलना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य है और आज राजनीति तो हर व्यक्ति की दाल-रोटी बन गई है। ऐसे लोगों से हमारी केवल एक प्रार्थना है कि वे अपने देश के व विदेशों के बड़े राजनीतिज्ञों के जीवन पर दृष्टि डालें। हम देखेंगे कि अधिकांश राजनीतिज्ञों ने जीवन में मांस, मदिरा को हेय समझा है। उनके आचरणों की शुद्धता ने ढाल की तरह उनके जीवन की रक्षा की है और जो दो कदम आगे बढ़कर सत्य और अहिंसा को मानकर चले, वे अमर हो चुके हैं। हमें याद है, जब राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने युद्ध में सहयोग देने का निश्चय किया तो महात्मा गांधी ने उस संस्था से अपने को अलग कर लिया, जिसे वे २५ वर्षों से अपने रक्त से सींचते आरहे थे। उनके सिद्धान्तों की कीमत जिनकी रक्षा करना वे अपना परम धर्म समझते थे; बिना किसी राग-द्वेष के वे कांग्रेस से अलग हुए, लेकिन जनसेवा में लगे रहे। आज हम उन्हें न केवल अमर मानते हैं बल्कि उन इनीगिनी विभूतियों में स्थान देते हैं, जिनका सारा विश्व ऋणी है। तो हम यह कहें कि राजनीति या व्यवसाय या कोई अन्य परिस्थितियां अणुव्रत से मेल नहीं खाती हैं, तो इसमें हमारी अपनी ही कमजोरी है, जिसे हम जान बूझकर प्रश्रय दे रहे हैं। यदि हमें आत्मा के विरुद्ध कोई काम करना पड़ता है तो हम समझलें कि हमारा कोई अस्तित्व ही नहीं रहा। उसके बाद यदि हम यह सोचकर संतोष करना चाहें कि जनता की सेवा के लिए ही हमने जीवन व सिद्धान्तों के साथ समझौता किया है तो हम अपने को धोखा दे रहे होंगे। हमारे से जनता की कोई सेवा नहीं हो सकती है, यदि हम आदर्शों को अपने अनुकूल बनाते हैं। अणुव्रत नियमों का पालन हर एक व्यक्ति कर सकता है, चाहे वह अमीर हो या गरीब, व्यवसायी हो या किसान, राजनीतिज्ञ हो या अपने काम-धन्धे में ही लगा रहने

वाला व्यस्त व्यक्ति। यह तो नैतिक जागृति का व्रत है। ऐसा कौन राजनीतिज्ञ या धनपति है, जो नैतिक जागृति के बिना सुख और शान्ति की कल्पना करेगा।

नैतिक जागृति हमारी प्रमुख समस्या है। आज हर प्लेटफार्म पर रोटी-कपड़े का मुख्य प्रश्न होता है। बेकारी का भी प्रश्न उसी से आधारित व सम्बन्धित है, लेकिन नैतिक जागृति की आवश्यकता को स्वीकार करते हुए भी उस दिशा में जो प्रयत्न किए जा रहे हैं, वे समस्या को देखते हुए अपर्याप्त हैं। मैं तो यहां तक कहने को तैयार हूं कि यदि हमारी नैतिक दशा में सुधार हो जाये तो फिर कोई दूसरी समस्या नहीं रहेगी और इसी प्रकार यदि विश्व के लोगों का नैतिक स्तर ऊंचा हो जाये तो फिर हमें युद्ध की विभीषिका से हमेशा के लिए छुट्टी मिल जायेगी।

आज विश्व जिस भौतिक उन्नति की ओर तीव्र गति से बढ़ा जा रहा है, उसने भारतवर्ष को भी उसी होड़ में घसीट रखा है। लेकिन हम यह न भूल जायें कि भौतिक उन्नति वास्तविक शान्ति व सुख नहीं है। वह तो आत्मिक उन्नति में ही है। इसका यह अर्थ नहीं कि हम अकर्मण्य बन जायें, लेकिन इसका यह अर्थ अवश्य है कि हम सत्य को तिलाञ्जलि देकर मानवता की अस्थि-भस्म पर कर्मण्यता के नृत्य का ढ़ोंग न करें। झूठ बोलकर, चोरबाजारी करके, लाखों की सम्पति इकट्ठी करके कोई व्यक्ति अपनी कर्मण्यता का आदर्श उपस्थित नहीं कर सकता है। उससे अच्छा तो वह है, जो सचाई और ईमानदारी से रोज केवल चार पैसे ही कमाता है और कभी-कभी वह भी नहीं। इसी प्रकार किसी देश की उन्नति और समृद्धि इस बात से प्रकट व प्रमाणित नहीं होती है कि उसके पास कितने सहस्र विशालकाय और बमवर्षक हैं या कितनी मंजिलों के मकानों में वहां की जनता रह रही है। लन्दन में जलपान, न्यूयार्क में दोपहर का भोजन और पेकिंग में विश्राम, समृद्धि के लक्षण नहीं हैं; क्योंकि सृष्टि की विशालता और गति को देखते हुए यह गति—गति नहीं मानी जा सकती है। सच्ची उन्नति व समृद्धि तो इस बात में है कि हम अपनी इच्छाओं और वासनाओं पर नियंत्रण रखने में कहां तक सफल हुए हैं।

यह समझ लेने के बाद हमें अणुव्रत का चमत्कार दिखाई पड़ता है। आचार्य श्रीतुलसी ने इस आन्दोलन का श्रीगणेश कर इसे जो गति प्रदान की है, उसकी नाप-तौल संख्या या क्षेत्र से नहीं की जा सकती है। पिछले छः साल में अनैतिकता की गहरी निद्रा में सोनेवालों में से कितने जागे और कितनों ने अपना जीवन बनाया, इसका लेखा-जोखा करना कठिन है, किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि हम जिस अंधकार में घिरे हुए थे, उसमें अणुव्रत एक प्रकाश ज्योति बन कर आया और उसने न केवल देशवासियों को बल्कि विदेशों के लोगों को भी आकर्षित किया और अब वे भी सोचने लगे हैं कि क्यों न उनके यहां भी इसका प्रयोग किया जाए। अणुव्रत के सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के नियमों में हम विश्व के तमाम दर्शनों की विभिन्नताओं के अन्दर छिपी रहने वाली एकात्मकता का दर्शन करते हैं, इसलिए विश्व की जनता का आकर्षित होना आश्चर्यजनक नहीं। मेरा तो विश्वास है कि वह दिन दूर नहीं, जब कि विश्व के नेता इन्हीं सिद्धान्तों पर एकमत होकर जीवन-निर्माण की ओर अग्रसर होंगे। भौतिक उन्नति की चकाचौंध आत्मिक उन्नति के प्रकाशपुञ्ज में विलीन हो जायेगी। यह निराशाओं का और छल-प्रपंच, हिंसा आदि बुराइयों का युग समाप्त होगा। हम सभ्यता और संस्कृति के वास्तविक रूप को समझेंगे और उसी आत्मिक विद्या को अपना संबल बनायेंगे, जिसको भूलकर आज हम भटक रहे हैं। अणुव्रत उस विद्या का प्रथम पाठ है—उस विद्यालय का मुख्य द्वार है। आइये हम सब इसमें प्रवेश करें।

●

२७

अणु-शक्ति का संहारक रूप और अणुव्रत

—सत्यदेव विद्यालंकार

अणुवाद या परमाणुवाद का प्राचीन वैज्ञानिक रूप चाहे जो रहा हो, आज की अणुशक्ति के प्रयोग की वैज्ञानिक सम्भावनाएं चाहे जो हों, परन्तु साधारण मानव ही नहीं, असाधारण व्यक्तियों के सामने भी यह प्रश्न एक विकट समस्या बन कर खड़ा हो गया है कि अणु-शक्ति यदि संहार का निमित्त बन गई तो आज के मानव का क्या बनेगा ? राजधानी में भारतीय वैज्ञानिकों का राष्ट्रीय सम्मेलन जिस चिन्तायुक्त वातावरण में हुआ है, उसकी ध्वनि उसके तीन मुख्य भाषणों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से सुनने में आ रही थी। यह चिन्तायुक्त वातावरण आज के मानव की उस चिन्ता का सूचक था जो अणु-शक्ति के संहारक रूप के कारण सारे ही संसार में व्याप्त हुई है। दो हजार से अधिक भारतीय प्रतिनिधियों के अलावा विदेशों के भी ८० प्रतिनिधि उसमें सम्मिलित हुए। इंगलैण्ड के राजघराने की आज भी विश्व में बड़ी प्रतिष्ठा है। इसलिए 'ड्यूक आफ इडिनवरा' प्रिन्स फिलिप के सम्मेलन में पधारने को बहुत महत्त्व दिया गया। इन विदेशी प्रतिनिधियों की उपस्थिति के कारण सम्मेलन को सहज में अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा एवं गौरव प्रोप्त हो गया। हमारे लोकप्रिय महान् नेता और प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू सदा ही अणु-शक्ति के संहारक रूप के विरुद्ध चेतावनी देते रहते हैं। वे इस सम्मेलन में भी उस चेतावनी को देने में नहीं चूके।

पीड़ित मानवता की पुकार वैज्ञानिकों के सम्मुख उपस्थित करते हुए नेहरू जी ने कहा—'विज्ञान को आधिभौतिक उन्नति के साथ-साथ मानव के हृदय, मन और आत्मा की ओर भी दृष्टिपात करना चाहिए और अपनी उन्नति के साथ उनका तालमेल बैठाना चाहिए। विज्ञान ने विश्व और समाज

में जो परिवर्तन किए हैं, उनको देखते हुए हम आज एक नई सभ्यता की प्रभात बेला में हैं या यह पुरानी सभ्यता के सन्ध्याकाल में या दोनों में। क्या हमें इस घोर श्रम और उफान के रूप में अपने चारों ओर एक नई व्यवस्था की प्रसव-पीड़ा नजर आ रही है या पुरानी व्यवस्था की मरण वेदना ?

मानव समाज के सामने विज्ञान के दो पहलू हमेशा विद्यमान रहते हैं। जहां एक ओर विज्ञान की यह भव्य और प्रेरणादायी प्रगति नजर आती है, वहां कभी-कभी मन और आत्मा के आन्तरिक ह्रास और पतन के लक्षण भी दीखने लगते हैं, सामाजिक ढाँचे में दरारें दीख पड़ती हैं और मानवीय तथा राष्ट्रीय व्यक्तित्व में संघटन का अभाव दृष्टिगोचर होने लगता है।......... हम संहर्ता के रूप में विज्ञान की भयंकर तस्वीर भी देखते हैं। मानव को प्राप्त वही साधन और वे ही शक्तियां ऐसे विनाश के लिए सन्नद्ध की जा रही हैं, जिसे दुनिया ने कभी नहीं देखा।

श्री नेहरू ने विज्ञान के संहारक रूप का भयानक चित्र अंकित करते हुए जो चेतावनी दी है, उस पर यदि समय रहते समुचित ध्यान न दिया गया तो आज के मानव को निश्चित रूप से प्रलय का सामना करने को बाध्य होना पड़ेगा। आज के वैज्ञानिकों ने जल और स्थल का चप्पा-चप्पा नाप लेने के बाद अब अपना हाथ नभ की ओर पसारना शुरु किया है। अपने एक हाथ से वह चन्द्रलोक और सूर्यलोक जीतने की आकांक्षाएं प्रगट कर रहा है तो दूसरे हाथ से उसने विश्व-विजयी बनने का उपक्रम शुरू किया हुआ है। अपनी इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए विज्ञान के संहारक रूप का सहारा लेना सबसे दुर्भाग्यपूर्ण घटना है। यही कारण है कि अणुशक्ति का आविष्कार आज के मानव के लिए शुभ आशीर्वाद न बन कर भीषण अभिशाप बन गया है। अणुबमों और उद्जन बमों के केवल परीक्षण जब इतने घातक सिद्ध हो रहे हैं, तब यह कल्पना करना कठिन नहीं होना चाहिए कि नर-संहार के लिए किया गया उसका दुरुपयोग कैसा संघातक होगा ? जापान के नागासाकी और हिरोशिमा में किए गये अणुबमों के प्रयोग के बाद उसकी संहारक शक्ति को कई गुना बढ़ाया जा चुका है।

संयुक्त राष्ट्र अमेरीका और रूस की प्रतिद्वन्द्विता से पैदा हुई विभीषिका सारे जगत् पर छायी हुई है। इंगलैण्ड भी उस बिभीषिका को और अधिक प्रज्वलित करने एवं भयानक बनाने में संलग्न है। इसमें सन्देह नहीं कि एक ओर निःशस्त्रीकरण तथा संहारक साधनों पर नियंत्रण रखने की और दूसरी ओर अणु-शक्ति के मानव हित के लिए उपयोग करने की भी चर्चा चल रही है। परन्तु यह चर्चा नक्कारखाने में तूती के समान है। इस समय तो अणु-शक्ति का दुरुपयोग संहारक साधनों की सृष्टि करने और दूसरों पर अपनी धौंस जमाने के लिए ही किया जा रहा है। नेहरू जी ने नवयुग के प्रभात के प्रकट होने की, जिसको प्रसव-वेदना कहा है, वह हमारी विनीत सम्मति में विनाश से भयभीत मानव के कराहने की आवाज है ? न केवल पुरानी सभ्यता का ही किन्तु नई सभ्यता का भी उससे विनाश होना निश्चित है।

प्रश्न यह है कि इस अवश्यम्भावी को टाला कैसे जाये ? यह कहा जा सकता है कि जो अवश्यम्भावी है, वह टल कैसे सकती है। परन्तु दिन प्रति-दिन के व्यवहार में हम देखते और अनुभव करते हैं कि मृत्यु को अवश्यम्भावी मानते हुए भी उसको टालने की हर प्रकार की कोशिश की जाती है। डाक्टर, वैद्य या हकीम पर अन्तिम क्षण तक विश्वास रखा जाता है कि वह रोगी को कोई दवा दे देगा जिससे रोगी को मृत्यु-मुख से बचा लिया जायेगा। आशा का तार अन्तिम क्षण तक टूटता नहीं है। न तो रोगी ही आशा त्यागता है और न उसके सगे सम्बन्धी ही निराश होते हैं। अन्तिम क्षण तक मृत्यु को परास्त करने की कोशिश की जाती है। जबकि हम व्यक्ति के जीवन में आशावाद का यह भव्य रूप देखते हैं, तब मानव समाज के जीवन के सम्बन्ध में निराश होना कोई अर्थ नहीं रखता है। घोर से घोर निराशा की काली घटाओं में चमकनेवाली आशा की विद्युत्-रेखा पर हमारी दृष्टि लगी ही रहनी चाहिए। अथाह सागर में नाव के उलटने या टूटने पर जो व्यक्ति उससे चिपटा रहता है, उसके प्राणों की रक्षा किसी न किसी प्रकार हो ही जाती है। इसी प्रकार चारों ओर विनाश या संहार की तांडव-लीला होने पर भी मनुष्य को जीवन की आशा नहीं त्यागनी चाहिए।

आशा के इसी सन्देश को आजकल की भाषा में अणुव्रत कहा जा सकता है। अणुव्रत कोई नई कल्पना नहीं है और न वह मानव जीवन का ऐसा कोई नया सिद्धान्त है। जीवन और मृत्यु का खेल मनुष्य के साथ सृष्टि के प्रारम्भ काल से लगा हुआ है और वह अनन्तकाल तक लगा रहेगा। इस अनादि और अनन्तकालीन समस्या को हल करने के लिए जो मार्ग अपनाया गया, उसी को अणुव्रतों तथा महाव्रतों की संज्ञा दी गई है। आज के युग में विश्वासपूर्वक अणु-शक्ति के संहारक रूप के मुकाबले में अणुव्रत के दिव्य व्यावहारिक सिद्धान्त को उपस्थित किया जा सकता है।

सम्मेलन में भले ही किसी ने 'अणुव्रत' शब्द का उच्चारण न किया हो; परन्तु विज्ञान के संहारक रूप के विरुद्ध जो चेतावनी बार-बार दी गई थी, वह उस बात की सूचक है कि तृषा से व्याकुल मृग पानी की खोज के लिए भटक रहा है। भय केवल इतना है कि उसकी यह व्याकुलता उसकी तृषा की पूर्ति का साँधन न बनकर कहीं केवल मृगतृष्णा बनकर ही न रह जाए। इसीलिए हम आग्रहपूर्वक उसका ध्यान उस चेतावनी की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जो नेहरू जी ने विज्ञान-सम्मेलन में दी है।

इस समय हमारे देश में गंगा-यमुना की धाराओं की तरह दो महान् आन्दोलन चल रहे हैं। दोनों का बाहरी और भीतरी रूप भी प्रायः एक-सा ही है। एक को सर्वोदय नाम दे दिया है तो दूसरे को अणुव्रत (आत्मोदय) कहा जा सकता है। दोनों के प्रवर्त्तकों ने आज की दुनिया से सर्वथा भिन्न व निराला मार्ग अपनाया है। गति के इस युग में वे दोनों ही पैदल यात्रा करते हैं और अपनी गति की शक्ति का ही उनको एक मात्र सहारा है। प्रचार के इस युग में उनको उसकी भी इतनी चिन्ता नहीं है। प्रकाशन और विज्ञापन से वे कोसों दूर हैं। बड़े-बड़े सम्मेलनों में विश्व की गम्भीर समस्याओं पर दिमाग लगानेवाले लोग प्रायः उनकी उपेक्षा कर जाते हैं। उनको इस उपेक्षा की भी कोई शिकायत नहीं है। विश्व भर के समाचारों की चर्चा करने वाले समाचार-पत्रों में उनके नाम और उनके काम की प्रायः नहीं के बराबर ही चर्चा की जाती है, फिर भी वे निराश या हताश नहीं होते। मानव के पुनरुद्धार का सन्देश लिए वे

गाँव-गाँव घूमते फिरते हैं। सन्तप्रवर विनोबा और आचार्य श्रीतुलसी अपने ही ढंग से अपना काम करने में मग्न हैं। आचार्य विनोबा का भूदान अथवा ग्रामदान मानव के अन्दर जो कुछ भी नेक है, उसको जगाना चाहता है और उसको जगाकर मानवता को जगाने के लिए प्रयत्नशील है। इसी प्रकार आचार्य श्रीतुलसी का अणुव्रत-आन्दोलन मानव में सद्गुणों और सद्वृत्तियों को पैदा कर मानव धर्म को जगाने के लिए प्रयत्नशील है। दोनों का माध्यम वह मानव है, जो आधुनिक परिस्थितियों में उलझकर मानवता के पक्ष से विचलित हो चुका है।

यह कहा जा सकता है कि केवल दो व्यक्ति, चाहे वे कितने ही महान् क्यों न हों, इतने बड़े संसार को अथवा इतने बड़े देश को कैसे सुधार सकते हैं? साधारण मनुष्य के लिए इस प्रश्न की कुछ कीमत हो सकती है, परन्तु सुधार का सन्देश लेकर प्रगट होनेवाले सुधारक के लिए इस प्रश्न का कोई अर्थ नहीं है। सुधारक प्रायः अकेला ही अपने मिशन में लग जाता है और वह उसकी कभी भी परवाह नहीं करता कि कितने लोग उसका साथ देते हैं। जैसे आज सन्त बिनोबा और सन्त तुलसी मानवता का सन्देश सुना रहे हैं, वैसे ही आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले महावीर और बुद्ध मानवता के उद्धार की धूनी रमाये हुए थे। ईसा और मुहम्मद ने जब अपना पैगाम सुनाना शुरू किया था तो किसानों ने उनका साथ दिया था। राम और कृष्ण का साथ देनेवाले कितने थे? श्रीकृष्ण को सदा ही अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों में और प्रायः अकेले ही अपना कार्य करना पड़ा। यहां तक कि महाभारत के युद्ध में भी ११ अक्षोहिणी के विरुद्ध वे जिस पक्ष के साथ थे, उसकी सेना की संख्या केवल सात अक्षोहिणी थी और उन्होंने इस शर्त के साथ अर्जुन का सारथी बनना स्वीकार किया था कि उसकी सारी यादव सेना विपक्ष में रहेगी और वे स्वयं कोई हथियार हाथ में न लेंगे। संख्या का बल सुधारक महापुरुष के लिए कोई अर्थ नहीं रखता। वह महाकवि रवीन्द्र के शब्दों में अकेला ही चलता है।

आचार्य श्रीतुलसी अनेक बार यह घोषणा कर चुके हैं कि अणु-शक्ति के संहार के इस युग में यदि मानवता की रक्षा होनी सम्भव है तो वह केवल

अणुव्रतों के द्वारा ही हो सकती है। मानव की आसुरी लालसा और राक्षसी महत्त्वाकांक्षा सीमा को लांघ गई है। उसकी भूख इतनी बढ़ गई है कि अपने पेट में सब-कुछ भर लेने के बाद भी उसका शान्त होना सम्भव प्रतीत नहीं होता। अपने पेट में सब-कुछ समाने के लिए वह हिंसा, स्तेय व परिग्रह आदि सब कुछ करने पर उतारू हो जाता है। छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, घात-प्रतिघात आदि का प्रारम्भ उसकी इन प्रवृत्तियों से ही हुआ है। इन प्रवृत्तियों पर कोई भी नियंत्रण लगाकर निःशस्त्रीकरण सम्मेलनों में जहां नियंत्रण लगाने की चर्चाएं की जाती हैं, वे सब पत्तों के धोने के समान निरर्थक सिद्ध होती हैं। "मुह में राम बगल में छूरी" की दुर्नीति का अवलम्बन करनेवाला आज का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिज्ञ इसी कारण अपने किसी प्रयत्न में सफल नहीं होता। इसमें सन्देह नहीं कि आज के मानव की सत्प्रवृत्तियों का क्षेत्र बहुत बढ़ गया है। विज्ञान ने सारे ही संसार को और सारे मानव-समाज को एक घर और एक परिवार का-सा रूप दे दिया है। मुश्किल यह है कि उसकी सत्प्रवृत्तियों के साथ-साथ उसकी दुष्प्रवृत्तियों का दायरा भी इसी प्रकार फैलकर विश्व-व्यापी बन गया है। किसी भी एक देश में की गई बुराई एकाएक सारे विश्व पर छा जाती है और मानव-समाज को उसका दुष्परिणाम भोगना पड़ता है। इसी कारण आज किसी भी सत्प्रवृत्ति को सफल बनाने के लिए पहले की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर एवं घोर प्रयत्न करने की अपेक्षा है।

श्रीकृष्ण ने जब गोवर्धन पर्वत उठाने का संकल्प किया था तो अवतारी पुरुष होने के नाते वे संकल्प मात्र से उसको ऊपर उठा सकते थे परन्तु उसके लिए सब बाल-गोपाल का सहयोग लेना उनके लिए आवश्यक हो गया था। इसी प्रकार लंका-विजय करने के लिए श्रीराम के लिए वानर सेना का सहयोग प्राप्त करना अनिवार्य हो गया था। साधक अथवा सुधारक निजी रूप से अपने लिए दूसरों से कोई अपेक्षा न रखते हुए भी जब दूसरों के लिए काम करना शुरू करता है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि दूसरे इसमें तन, मन, धन का पूर्ण सहयोग प्रदान करें। आज का विज्ञान जिन विश्व-शक्तियों के हाथों में पड़कर मानव के संहार का निमित्त बन गया है, उसके पास शक्ति

और साधनों की कोई कमी नहीं है। उनकी अपार शक्ति का मुकाबला केवल विश्वास और संकल्प की महान् शक्ति से ही किया जा सकता है। अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्रीतुलसी उस विश्वास और संकल्प के ऐसे प्रतीक हैं जो दूसरों में भी निरन्तर उस विश्वास और संकल्प को पैदा करते रहते हैं। चुम्बक जैसे लोहे में से अपनी शक्ति का संचार कर उसमें दूसरे लोहे को अपनी ओर खींचने की आकर्षण शक्ति पैदा कर देता है, वैसे ही अणुव्रतों की शक्ति भी एक दूसरे को आकर्षित करने की क्षमता अपने में रखती है। यह कौन न चाहेगा कि अणुव्रतों की इस शक्ति का चारों ओर संचार हो और वह मानव में उस शक्ति को भर दे जिसके सम्मुख अणु शक्ति का संहारक रूप क्षीण पड़ जाए।

हमारी विनीत सम्मति में हमारे प्रधान मंत्री श्री नेहरू ने विज्ञान सम्मेलन में एकत्रित वैज्ञानिकों से जो आशा की है, उसको पूरा करने का दायित्व निश्चित रूप से उन अणुव्रतियों पर है, जिन्होंने अणुव्रतों की दीक्षा लेकर अपने को आचार्य श्रीतुलसी का अनुगामी बनाया है। क्या वे अपने प्रधान मंत्री की इस आशा को पूरा कर सकेंगे?

●

२८

अणुव्रत बनाम अणुबम

—श्री यशपाल जैन
सम्पादक, जीवन साहित्य

अणुव्रती-संघ के प्रति मेरी दिलचस्पी उसकी स्थापना के समय से ही रही है। आज पश्चिमी सभ्यता अपनी पूरी शक्ति के साथ हमारे रहन-सहन, हमारी विचारधारा व हमारी संस्कृति आदि सब पर प्रभुत्व डाल रही है। जीवन के मूल्य उसने बदल दिये हैं। हमारी दृष्टि अन्तर्मुखी होने की अपेक्षा बहिर्मुखी अधिक हो गई है। हम दूसरों के दोषों को तिल का ताड़ बनाकर देखते हैं, पर अपने दोष हमें दृष्टिगोचर नहीं होते। वैयक्तिक स्वार्थ-साधना ने लोक या समष्टिहित की भावना को दबा दिया है।

भारत आध्यात्मिक देश रहा है। इस भूमि पर समय-समय पर, अनेक ऋषि-महर्षि, संत, साधु, धर्म-प्रसारक हुए हैं, जिन्होंने कहा है कि मानव की विजय भौतिक उपलब्धियों में नहीं है, वल्कि आत्मिक उन्नति में है। उन्होंने यह भी कहा है कि यह दुनिया एक माया जाल है। इसमें जो कमलवत् रहेगा, वह वास्तविक सुख और शान्ति पायेगा, जो उसके दलदल में फंसेगा, वह आजीवन भटकता रहेगा। पश्चिमी सभ्यता ने हमें और हमारे समाज को भौतिकता प्रेमी बना दिया है। मनुष्य की सफलता जबकि एक समय में उसकी आत्मिक उन्नति के आधार पर आंकी जाती थी, आज इस बात से आंकी जाने लगी है कि उसने कितना पाया और कमाया है? हमारी समूची दृष्टि ही बदल गई है यह निश्चित रूप से पश्चिमी सभ्यता की देन है।

आज अपनी सुरक्षा के लिए तरह-तरह के भीषण संहारात्मक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हो रहा है। हम दो महायुद्ध और उनमें हुई अकल्पनीय जन-धन की हानि देख चुके हैं। फिर भी तीसरे महायुद्ध के बादल आकाश में मंडराते

दिखाई देते हैं। प्रत्येक बड़ा देश अपने बचाव की तैयारी में अणुबम, हाईड्रोजन बम, लड़ाकू यान आदि की भरपूर व्यवस्था कर रहा है। उनकी मान्यता है कि आगे लड़ाई जल या थल की नहीं, बल्कि हवा की होगी। धरती पर चलने वाली सेनायें, घुड़सवार आदि अब विशेष काम के सिद्ध नहीं होंगे। वही राष्ट्र विजयी होगा, जिसके पास हाईड्रोजन बम अथवा अणुबम की शक्ति होगी। हिरोशिमा पर एक बम गिरा कि झगड़ा खत्म। हजारों व्यक्ति मरें और हजारों वर्षों तक कराहते रहें, तो इससे क्या ?

मानव के इस संहार पर आज की सभ्यता जीती और पोषण करती है। अपनी आन्तरिक दुर्बलता को छिपाने के लिए वह बाहरी उपक्रमों का सहारा लेने के लिए व्यक्तियों और राष्ट्रों का बांधा करती है।

लेकिन इसके विपरीत हमने देखा कि एक महापुरुष आया, जिसका व्यक्तित्व हिमालय के समान उच्च एवं दृढ़ और गंगा की जलधारा की भांति पवित्र था। भारत की आध्यात्मिक परम्परा का वह अनन्य पुजारी था। उसने अपना स्वर ऊंचा किया, वही स्वर जो समय-समय पर हमारे धर्म-प्रवर्तकों और धर्माचार्यों ने ऊंचा किया था। उसने कहा कि सबसे उत्कृष्ट बल यदि कोई है तो वह आत्मिक बल है। मानव उसे अपने भीतर पैदा कर ले तो उसके आगे न बन्दूक ठहर सकती है, न तोप, न अणुबम न हाईड्रोजन बम। उसने इस बल को अपने अन्दर विकसित किया और भारत भूमि पर उसका सफल प्रयोग करके दिखा दिया। उसका एक ही नारा था—मानवता सुखी रहे और उसके अस्त्र थे—सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि ग्यारह महाव्रत।

उसने भारत को सलाह दी कि अस्त्र-शस्त्र से राज्य की रक्षा भले ही हो जाये, मानवता की रक्षा कदापि नहीं हो सकती। यही बात उसने दुनिया से कही।

अपने आत्मिक बल से इस युग-पुरुष ने उस महान् साम्राज्य की जड़ उखाड़ दी, जिसके विषय में कहा जाता था कि उसका विस्तार इतना अधिक है कि उस पर कभी सूर्यास्त नहीं होता।

आज संघर्ष दो विचारधाराओं का है। एक पश्चिम से आई है और वह

कहती है कि जीवन का वास्तविक आनन्द खाने-पीने व मौज उड़ाने में है। दूसरी कहती है कि नहीं, जीवन का वास्तविक आनन्द भोग में नहीं, त्याग में है; असंयम में नहीं, संयम में है; झूठ में नहीं, सत्य में है और भौतिक उपलब्धियों में नहीं, अपरिग्रह में है। पहली का प्रतीक है अणुबम और दूसरी का प्रतीक अणुव्रत। आज संघर्ष इन्हीं दो विचारधाराओं के बीच हो रहा है।

हमारी निश्चित धारणा है कि आत्मबल के समान दूसरा बल नहीं है। जब तक इस बल की प्राप्ति नहीं होगी, मानव सुख और शान्ति से नहीं रह सकता।

अणुव्रत और अणुव्रती-संघ के प्रति मेरी अभिरुचि इसलिए रही है कि वे मानव को आत्मिक दृष्टि से सशक्त बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। वे मनुष्य की मानवता पर जोर देते हैं और चाहते हैं कि हम सब अपनी निगाह अपने अन्दर डालें, अपने दोषों का दर्शन करें और उन्हें दूर करने की यथासम्भव चेष्टा करें। संघ के उद्देश्य हैं:—

(क) जाति, वर्ण देश और धर्म का भेदभाव न रखते हुए मानवमात्र को सदाचार की ओर आकृष्ट करना।

(ख) मनुष्य को अहिंसा, सत्य, अचौर्य ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि तत्त्वों का व्रती बनाना।

(ग) आध्यात्मिकता के प्रचार द्वारा गृहस्थ जीवन के नैतिक स्तर को ऊंचा करना।

(घ) अहिंसा के प्रचार द्वारा विश्व-मैत्री व विश्व-शान्ति का प्रसार करना।

मेरे विचार से ये उद्देश्य बहुत व्यापक हैं और इनमें सब कुछ आ जाता है।

अणुव्रती-संघ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी से भी घरबार छोड़कर फकीर होने की प्रेरणा नहीं करता। वह कहता है कि तुम व्यापारी हो, पर अपने व्यवसाय को; अपने काम को और उससे भी बढ़कर अपने जीवन को पुनीत बनाओ। जितना तुम्हारा जीवन विशुद्ध होगा, उतने ही तुम ऊर्ध्वगामी बनोगे। चक्रवर्ती राजा हुए और मिट गये। वीर योद्धाओं ने बड़े-बड़े

पराक्रम दिखाये। उनके नाम इतिहास के किसी कोने में भले ही पड़े रहें, किन्तु उन्हें कोई नहीं जानता। लेकिन राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, मुहम्मद, जर्थुस्त, कन्फ्यूशस आदि का स्मरण कर लोग धन्य होते हैं। लोक-जीवन पर आज भी इन महापुरुषों का प्रभाव है और जब तक मानवता जीवित रहेगी, ये सब अमर रहेंगे।

आज दुनिया में जितने धर्म है, सबके मूल उद्देश्य एक हैं। लेकिन कालान्तर से, उनके रूप में अन्तर आ जाता है। उससे भी बढ़कर बात यह है कि धर्मों का पालन उसकी स्प्रिट के अनुसार नहीं, बल्कि रूढ़ि के रूप में किया जाता है। हम उत्सव करते हैं, व्रत उपवास रखते हैं, पर कितने हैं जो उनकी भावनाओं को समझ कर करते हैं। अणुव्रती-संघ को एक विदेह संस्था के रूप में रखा गया है और यह शुभ है। कारण कि विधि-विधान नियम-उपनियम में बन्धकर अधिकांश संस्थायें निर्जीव हो जाती हैं। उनके आगे नियमादिक का पालन इतना आवश्यक और महत्व का हो जाता है कि मूल भावना उनके हाथ से निकल जाती है। अणुव्रती-संघ को इससे उन्मुक्त रखकर उसके संयोजकों ने बड़ी दूरदर्शिता का काम किया है, पर अन्य धर्मों के जिस दोष का हमने उल्लेख किया है, उससे इस संघ को भी बचाना होगा। जो भी नियमादि रखे गये हैं, उनका विवेकपूर्वक पालन हो, रूढ़ि के रूप में नहीं। ऐसा एक व्रती भी मिल गया तो वह एक लाख के बराबर होगा और वह अणुव्रती-संघ की ध्वजा को ऊंचा रखेगा।

●

२६

हमारे दो शत्रु और अणुव्रत-आन्दोलन

—श्री मुद्राराक्षस

सम्पादक, अणुव्रत

यह एक ताज्जुब की बात तो है ही कि हम जो कभी अपनी नैतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों के कारण ही संसार के अकेले व्यक्तित्व थे, किसी ऐसे आन्दोलन की बात चलाएं जो देश के नैतिक पुनरुत्थान की बात कहे। कितनी अजीब बात है कि एक ओर तो वह समय था जब हम और हमारा इतिहास नैतिकता की सबसे अनूठी मिसाल हुआ करता था और एक यह समय है कि बजाय इसके कि हम दूसरों को किसी अच्छी बात की प्रेरणा दें, स्वयं इस बात की जरूरत महसूस करते हैं कि अपने नैतिक पुनर्निर्माण के लिए कोई उपाय करें। यह कटु सच्चाई है। शायद इससे बड़ी अशोभनीय बात हमारे जीवन की और दूसरी नहीं हो सकती है कि जिस चीज को हम कभी दूसरों को दिया करते थे, आज हम उसी चीजके लिए अपने आप तरस रहे हैं।

कभी हमने अहिंसा की वह मिसाल भी पेश की थी जिसने सारे संसार को तब से आज तक बार-बार यह बताया है कि इन्सान को मारने से ज्यादा अच्छा है किसी मरते इन्सान को जिन्दगी दे देना। कभी हमने सचाई, ईमानदारी, इंसाफ और ऐसी ही हर अच्छाई की इतनी अच्छी खेती की थी कि न केवल हम ही उस खेती की पैदावार से खुशहाल हुए थे, बल्कि तमाम दक्षिण पूर्वी एशिया और यहां तक कि योरपीय क्षेत्रों तक के लोगों ने उससे खुशहाली का हिस्सा पाया था। कभी वह जमाना भी था जब हमसे लोग सीखने आते थे, यूनान जैसे विचारशील देशों तक से चलकर सिर्फ वह रहस्य जो इन्सान को इन्सान की सच्चो कीमत आंकना सिखाता है और फिर बीच में एक ऐसा समय आ पड़ा जब हमने न जाने कैसे

अपने तमाम अच्छे गुणों को छोटी-छोटी चीजों के बदले बेचना शुरू कर दिया। किसी ने कहा कि वह हमें रुपया देगा और हमने उसके हाथ अपने भाई की जिन्दगी बेचदी। किसीने कहा कि वह हमें खिलत देगा और हमने उसके हाथ अपनी अस्मत बेच दी। किसीने कहा कि वह हमें अपने पाप का एक हिस्सा दे देगा और हमने उसके हाथ अपनी तमाम बौद्धिक कमाई को बेच दिया।

जैसे किसी अच्छे कुल में कोई विलासी और फिजूलखर्च किस्म का लड़का पैदा हो जाये तो उस कुल की न तो मर्यादा ही बाकी रहती है और न उसकी सम्पत्ति उसी तरह जाने क्या मजबूरियां आई हमारे सामने कि अपनी हजारों साल से संजोई हुई विरासत की एक एक अच्छी बातको हमने लोगों के हाथों बेचना शुरू कर दिया और आज हम देखते हैं कि हम बिलकुल कंगाल हैं; हम बिलकुल भिखारी की तरह खाली हाथों दूसरे की ओर ऐसे देख रहे हैं जैसे कोई शराबी खूब शराब पी जानेके बाद किसी नाले में जा गिरता है और फिर हर राह चलने वाले को कातर होकर ताकता है कि शायद कोई उसके हाल पर रहम खाकर उसे निकाल ले गन्दगी से।

शराबी शराब के नशे में जब नालीमें गिरता है तो हमें उसे देखकर सहानुभूति नहीं होती बल्कि अक्सर हम उसकी ओर हिकारत की निगाह से देखते हुए कतरा जाते हैं। इसी तरह जब कोई रईसजादा अपनी ऐयाशी में अपनी तमाम जायदाद फूंक कर भिखारी हो जाता है तो लोग उसे भीख भी अच्छे मन से नहीं देना चाहते। ठीक वही हालत आज करली है हमने। अपने पुरखों की सबसे कीमती कमाई को हमने बेच खाया। आज हम कंगाल की तरह लोगों के सामने हाथ पसार रहे हैं कि कोई हमें अच्छा रास्ता बताओ।

हमारे विश्वविद्यालयों में क्या होता है ? यह तमाम रिसर्च और यह तमाम स्टडीज, यह क्या है ? यह सिर्फ इस बात का सबूत है कि हमारी जेब तो इतनी खाली हो चुकी है कि उसमें एक कौड़ी नहीं मिलती और जब हम कोशिश करते हैं कि अपने कपड़े उतार कर उन्हें एक बार अच्छी तरह झाड़ें, शायद कोई नन्हा पैसा चिपका रह गया हो अभी भी ज्ञान का, अच्छी बातों का।

जब हम विश्वविद्यालयों में बैठकर किसी खास मसले पर गौर करते हैं तो हमारी जुबान पर बार-बार किसी विदेशी विद्वान् का नाम ही क्यों आता है ? आज हम अंग्रेजी तो आसानी से पढ़ लेते हैं, संस्कृत क्यों पढ़ नहीं पाते ? आज क्यों रिसर्च करनेवाले विद्यार्थी बार-बार अपनी थीसिसों के हर पन्ने पर विदेशी विद्वानों के नाम टांक कर गौरव का अनुभव करते हैं ? इसका कारण सिर्फ एक है—हम खुद कंगाल हो चुके अपने ऐयाश तरीकों से, अपनी बेजा हरकतों से और इसीलिए हम बार-बार भीख के लिए तरसते हैं, किसी और की ओर देख कर।

हम, जो कभी सचाई का नमूना थे, सचाई को दुर्लभ गुणों की तरह याद करते हैं। हम जो कभी ईमानदारी, न्याय और दया जैसी प्रवृत्तियों के पहले प्रतिष्ठाता थे, आज हम खुद अपने आप ही आपस में एक दूसरे के साथ बेईमानी करते हैं, दगाबाजी करते हैं, एक दूसरे से लड़ते हैं, नफरत करते हैं, एक दूसरे की चीज जबर्दस्ती हथियाने की कोशिशें करते हैं। जमाने का इतिहास तो यह कहता है कि किसी संस्कृति का सबसे पहला गुण होना चाहिए उसकी निरन्तर प्रगतिशीलता। आखिर हमने किस मायनी में प्रगति की है ? होना तो यह चाहिए था कि अगर कभी हमारे बीच आपस में ही न्याय का निपटारा हो जाया करता था तो आज प्रगति करते-करते हम इस स्थिति तक आ जाते कि अन्याय की कोई गुंजाइश ही न रहती। हमारे देश में कोई न्यायालय जैसी चीज नहीं है, क्योंकि कोई अन्याय नहीं करता—सोचिए तो जरा कि अगर आज हम यह बात किसी दूसरे देश के सामने कह सकते तो हमारी इज्जत उसके सामने कितनी ऊँची हो जाती !

लेकिन इसके विपरीत हमें देशके नैतिक पुनरुत्थान की बातें सोचनी पड़ रही है। देश में ऐसे आन्दोलन चलाने पड़ रहे हैं जो लोगों को नैतिकता क्या है, यह बता सकें।

और इससे भी बड़ी हैरत की बात यह है कि आन्दोलनों के बावजूद कोई ऐसी बातें सुनने को तैयार नहीं हो रहा है।

नहीं, यहां हमें थोड़ा-सा संशोधन करना होगा, अपने विचार में।

लोग सुन तो रहे हैं नैतिकता की बात और उनको अमल में भी लाना चाहते हैं, लेकिन नैतिक मूल्यों और मर्यादाओं को दूसरी ओर से खोखला बनाने वाले तत्त्व भी हमारे बीच इतने अधिक आगए हैं कि जिन थोड़े से इन्सानों में अन्तर की थोड़ी-सी सफाई बच भी रही है, उनके लिए जीवन का इतना जटिल जाल-सा फैला हुआ है कि अपने दिल की सच्चाई और ईमानदारी का विकास करने का उन्हें मौका ही नहीं मिल पा रहा।

आइए हम जरा गौर करें कि समाज में ऐसे कौन से तत्त्व हैं जो हमारे बीच अच्छी बातों और अच्छे कामों के होने और विकास करने में बाधाएँ पैदा करते हैं।

इस ओर दो बातें ध्यान में आती हैं। यों तो किसी जमाने में गांधीने भी उनकी ओर लोगों का ध्यान खींचा था और उससे पहले दयानन्द सरस्वती ने काफी अरसे तक उन तत्त्वों से संघर्ष करने की कोशिश की थी, लेकिन आज के एक प्रयत्नकी बात मेरे जेहन में सबसे ताजी है। अणुव्रत-आन्दोलन— देश में नैतिक मर्यादाओं की प्रतिष्ठा के लिए अपनी समूची बौद्धिक प्रक्रिया का प्रयोग करने वाला आन्दोलन। चूँकि यह आन्दोलन हिन्दुस्तान में बड़े पैमाने पर नैतिक मूल्यों को पुनःस्थापित करने का एक मजबूत कदम है और यही एक ऐसा कदम है जो सीधे तौर पर इसी एक काम को प्रमुखता देकर शुरू हुआ है, इसलिए इसी की ओर ध्यान जाता है। इस आन्दोलन ने इन दो बातों की तरफ बराबर लोगों को मुतवज्जेह करने का प्रयत्न किया है और अपने हर कदम के साथ समाज को इन बातों से आगाह भी किया है; क्योंकि यही दो बातें हैं जो हमारे तमाम नैतिक प्रयत्नों को मिट्टी में मिला देती हैं।

पहली बात है अपने आत्मिक विकास के अभाव की। बहुधा ज्यादा पढ़े-लिखे लोग आत्मिक विकास की बात को बकवास मानते हुए देखे गए हैं और यह ज्यादा खेद की बात है। अगर कोई जाहिल और बेपढ़े लोग ऐसी बातें करते तो सोचा जा सकता था, लेकिन ताज्जुब की बात तो यह है कि अच्छे खासे विद्वानों के मुंह से भी यह अक्सर सुना जाता है कि आत्मिक विकास का कोई खास अर्थ नहीं हो सकता, क्योंकि आत्मा नाम की चीज हो, तब उसकी बात

की जाय। यही ख्याल सब से ज्यादा खतरनाक साबित होरहा है। लोग यथार्थवादी होना चाहते हैं और यथार्थवाद की उस झोंक में यह भूल जाते हैं कि आत्मिक विकास अक्सर मानवीय सम्बन्धों की उन अन्तरंग विशेषताओं की उपेक्षा कर जाते हैं जो यथार्थ की भूमि में पैदा जरूर होती हैं लेकिन उनकी काया मानसिक हुआ करती है। एक उदाहरण से इस बात को स्पष्ट किया जा सकता है। दो इन्सान झगड़ा करते हैं। झगड़ा किसी सम्पत्ति का भी हो सकता है और किसी रिश्ते का भी और यह दोनों ही कारण यथार्थ हैं, लेकिन इसके बावजूद उन दोनों में जो नया रिश्ता कायम हुआ झगड़े का, वह भौतिक सचाई न होकर मानसिक सचाई है और इसीलिए जरूरी है कि जब कभी हम झगड़े के बारे में कुछ सोचें, हमें इसबातको ध्यान में रखना होगा कि वह एक मानसिक सचाई है और फिर उसके प्रतिकारके लिए भी हमें किसी भौतिक साधन की अपेक्षा किसी मानसिक साधनकी ओर ही ध्यान देना होगा। मसलन् झगड़ा अन्तिम रूप से इस बात को लेकर ही कभी निबटाया नहीं जा सकता कि किसी को सम्पत्ति का माँग के अनुसार हिस्सा दे दिया जाये, क्योंकि अगर यह मुमकिन होता तो झगड़ा होता ही नहीं। झगड़ा तो तभी समाप्त होगा जब हम झगड़ा करनेवाले की मानसिक स्थिति का अध्ययन करके उसके अनुकूल कार्यवाही करें, चाहे वह उपचार की कोटि का हो अथवा संतोष की।

नैतिक नियमान की सामाजिक योजनाएं यही करती है। दो देश अगर किसी प्रदेश के अधिकार के बारे में युद्ध करते हैं तो उसका निपटारा तभी होगा, जब दो देशों के लोग उस जमीन की बात छोड़कर दूसरी मानवीय बातों की ओर गौर करेंगे, जब यह सोचेंगे कि उस जमीनको खून से सींचकर पाने से बेहतर है कि गंवा दिया जावे। यही है परिस्थितियों के बारे में आत्मिक धरातल से उपलब्ध सत्यों की उपयोगिता। अणुव्रत आन्दोलन चाहे छोटी समस्या हो अथवा बड़ी, उसका हल इसी परिप्रेक्ष्य में युग के सामने पेश करता है।

दूसरी बड़ी बात हैं फैशन की, जिसे अप-टु-डेट होनेकी संज्ञा दी जाती

है। यानी जो धोती पहनता है वह पुराना, जो पतलून पहनता है वह नया। जो औरत बालों को लड़कों की तरह कतराकर राक एण्ड रोल कर लेती है वह आधुनिक और जो चोटी काढ़कर गंगा-स्नान करने जाती है वह पुरानी और दकियानूस। जो ड्राइंगरूम के सोफे पर बैठकर मैरेलिन मनरो और एलिजाबेथ टेलर जैसी फिल्मी नायिकाओं के नखरे पर बहस करता है वह अप-टु-डेट और जो लंकावतारसूत्र का अध्ययन करता है वह दकियानूस। इस बात ने हमारी जिन्दगी की मान्यताओं को इस कदर बदला है कि हम हर ऐसी चीज को हेय मानने लगे हैं जो किसी परम्परा से हमें जोड़ती हो। समाज के हर कोने में इस नए बहाव का असर हो रहा है। हम ग्रामोद्योगों को संरक्षण देने की बात करते हैं, लेकिन ज्यादातर इन ग्रामोद्योगों में हम फैशन परस्ती करते हैं। ग्रामोद्योगों की दुकान में एक शख्स भी ऐसा नहीं दीखता जो ग्रामीण संस्कारों को पहचानने जाता हो। लोग वहां इसलिए नहीं जाते कि ग्रामीण वस्तुओं को खरीदकर अपने जीवन में वे ग्रामीण चेतना को मान्यता देंगे बल्कि वहां भी लोग इसी नजर से जाते हैं कि फैशन की नई चीजें मिल सकेंगी। पहले लोग फ्रांसीसी डिजाइनों के ब्लाउज बनवाते थे और आज उड़िया आदिवासियों की चोलियाँ पापुलर हो रही है, इसलिए नहीं कि लोगों ने आदिवासियों की कद्र की, बल्कि इसलिए कि लोगों को उसमें नया फैशन दीखा यानी कि वह पहनने के बाद एक ओर शारीरिक नग्नता को दिखाया जा सकता है, दूसरी ओर फ्रांसीसी के बजाय चीज हिन्दुस्तानी हो गई।

यह तरीका गलत है। आदिवासियों की पोशाक हम जब नग्नता को सराहने के लिए पहनते हैं तो न केवल अपना ही अपमान करते हैं बल्कि आदिवासियों का भी अपमान करते हैं। बम्बई में ऐसी फिल्में बनने लगी हैं जिनमें नायिकाएं मजदूरिनों या देहाती लड़कियों का अभिनय करती हैं और मजदूरिनों की तरह ज्यादातर बिना ब्लाउज के ही धोती पहनती हैं, या फिर ऐसी पोशाक पहनती हैं कि ज्यादातर शरीर नंगा दीखे। यह सही बात है कि अधिकांश मजदूरिनें पूरी तरह कपड़े गरीबी के कारण नहीं पहन पातीं, लेकिन फिल्मों में वह अधखुला पहनावा इसलिए होता है कि देखने वाले शरीर प्रदर्शन

का आनन्द पाकर बार-बार पिक्चर देखते हैं। फिल्मों में नायिकाएं इसलिए अधूरे कपड़े नहीं पहनतीं कि जिनकी भूमिका वे निभाती हैं वे अधूरे कपड़े पहनती हैं, बल्कि इसलिए कि अधूरे कपड़े पहनकर उनका शरीर झलकता है और लोलुप प्रकृति दर्शक उसमें रस लेते हैं।

अभी विनोवा का एक नया आह्वान हुआ था—'अश्लील पोस्टर जलाओ'। इसके विरोध में अंग्रेजी के अखबार ब्लिट्ज ने लिखा कि लोग तस्वीरों में हीरोइनों को कम कपड़े पहने हुए बनाए जाने पर एतराज करते हैं, पर हिन्दुस्तान में करोड़ों औरतें इतनी गरीब हैं कि अर्धनग्नता का जीवन बिताती हैं।

बात जोरदार है। लेकिन एक बात और गौर करनेकी है। जो गरीब है और कपड़े नहीं पहन सकता, उसे देखकर अगर कोई अश्लील चेष्टाएँ करे तो हम क्या करेंगे ? हर किसी का जवाब होगा कि हम उसे दण्ड देंगे। बस, यही जवाब है ब्लिट्ज की बात का भी। यह ठीक है कि करोड़ों लोग अर्धनग्नता का जीवन बिताते है, पर उनकी अर्धनग्नता को हम फैशन मान कर सरेआम प्रदर्शित नहीं कर सकते। उसी तरह पोस्टरों से भी हम नहीं बर्दास्त कर सकते कि कोई नग्न सूरत हमारे संस्कारों पर महज आधुनिकता के नाम पर डाका डाले।

प्रासंगिक बात ही थी यह जो ऊपर कही। यह एक उदाहरण है हमारी नई मान्यताओं का। यह नई मान्यताएं हमारे संस्कारों को खोखला कर रही हैं, क्योंकि हम दिन-ब-दिन ऐसी चीजों को उपेक्षित करते जारहे हैं, जो समाज में सुथरी प्रवृत्तियों को प्रश्रय देती हैं। यह आधुनिकता हमारे फैशन में ही नहीं हमारी कला, हमारे संगीत और हमारे साहित्य तक को इसी प्रकार गलत राहों की ओर ले जारही है। अणुव्रत-आन्दोलन ने जहां लोगों को यह बताना चाहा है कि बुरा काम न किया जाये वहां उसने लोगों में उस आत्मिक विकास पर भी बराबर बल दिया है जो लोगों को अपने सही-गलत कदमों की पहचान कराता है। उसने जहां बुराई और अनैतिकता के उन्मूलन की आवाज उठाई है, वहां मानव के संस्कारों की उस ऊंचाई की तरफ भी इशारा किया है जो

हमारी अपनी ऐतिहासिक विरासत को हमें लौटवा सकें। जरूरत सिर्फ इतनी है कि अपने चारों ओर फैले दूषित वातावरण और दूषित प्रवृतियों को हम पहचानें और जीवन के आत्यन्तिक हित को समझने की कोशिश करें। इसके बाद तो हम सभी पाएंगे कि आन्दोलन कोई विष न होकर किसी दवा का कड़वा घूंट रहा है।

●

३०

अणुव्रत-आन्दोलन का उद्देश्य

--श्रीमती उर्मिला वार्ष्णेय, एम० ए०

अपने प्राचीन इतिहास के पृष्ठों को यदि हम पलट कर देखें तो ज्ञात होगा कि आज से सहस्रों वर्ष पूर्व भारत के ऋषि-महर्षि और द्रष्टाओं ने मानव के नैतिक उत्थान के लिए आन्दोलन चलाये थे। अनेक साधु-सन्त और धर्म-प्रवर्तकों ने जन-कल्याण के लिए आत्मिक उन्नति पर बल दिया था। दूसरी ओर आज की पाश्चात्य सभ्यता खाओ पीओ और मौज उड़ाओ की संस्कृति में विश्वास रखती है। वहां व्यक्ति की सफलता का मूल्य उसने संसार में क्या और कितना पाया इससे आंका जा सकता है। इस पाने की आपा-धापी ने विज्ञान के नये चरणों को विनाश की ओर मोड़ दिया है, यही इसका सबल प्रमाण है। एक विश्व-युद्ध के बाद दूसरे जनसंहारक ताण्डव और अब तीसरे की तैयारी से भी उनकी इच्छाओं की पूर्ति होती नहीं दिखाई देती। अपनी सुरक्षा के नाम पर अणुबमों और उद्जन बमों से वे अधिक से अधिक शक्ति संचय करना चाहते हैं। सच पूछो, तो आज की पाश्चात्य सभ्यता मानव-संहार के आयोजनों पर ही पनप रही है।

रुपया-पैसा, धन-दौलत, सुन्दर पत्नी, आज्ञाकारी सन्तान यदि पास में हैं, तो भी यह सब वाह्य उत्थान है। असली उत्थान तो नैतिक उन्नति में है। हमारे यहां यही सच्ची कसौटी मानी गई है। इसका कारण है कि मनुष्य की इच्छाएं असीम व अपरिमित होती हैं। वे सुख-भोग की सारी चीजें अपने में बटोर लेना चाहती हैं। उस सुख-भोग में कोई भी व्यवधान इन इच्छाओं को सह्य नहीं है। चाहे उनसे दूसरों का भयानक से भयानक अनिष्ट ही क्यों न हो?

आज भी जहां पश्चिम में "खाओ-पीओ और मौज उड़ाओ" की सभ्यता का प्रचार हो रहा है, हमारे देश में आत्मिक उन्नति को महत्त्व दिया जारहा है।

अणुव्रत-आन्दोलन भी इसी दिशा में प्रयत्नशील है। यह आन्दोलन क्या है? इसके उद्देश्य क्या हैं? यह जानना आवश्यक है।

अणुव्रत-आन्दोलन का आरम्भ लगभग आठ वर्ष पहले श्वेताम्बर जैन धर्म के अन्तर्गत तेरापन्थी सम्प्रदाय के आचार्य श्रीतुलसी ने किया था। उनका उद्देश्य तेरापन्थी सम्प्रदाय का विस्तार करना नहीं था, वरन् जाति, वर्ण का भेद किये बिना मानव-मात्र को संयम के पथ की ओर आकृष्ट करना था। यही कारण है कि एक बड़ी संख्या में जैनेतर सज्जनों ने भी इसको अपनाया है। इसमें प्रतिपादित आचारों का सम्बन्ध धर्म या विशेष सम्प्रदाय से न होकर मानव-मात्र के कल्याण से है।

अणुव्रत में जिन आचारों के पालन की प्रतिज्ञा व्रती लोगों से कराई जाती है, वे वैदिक धर्म में भी 'नियम' नाम से प्रचलित हैं।

"सत्याहिंसा स्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः"

इन पांचों आचारों के ही पालन की प्रतिज्ञा अणुव्रती से कराई जाती है। भेद है तो केवल इतना ही कि इन पाचों आधारों का निर्देश सूत्र रूप में न होकर प्रतिज्ञाओं के रूप में है और इन प्रतिज्ञाओं की भाषा लोक-व्यवहार के अनुकूल बना दी गई है।

अणुव्रत का मूल हमें वैदिक धर्म में दिखाई देता है। आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने इन्हीं प्रतिज्ञाओं का मूलरूप में केवल भाषा के अन्तर से आर्य-समाज के दस नियमों में उल्लेख किया है। वहां इन पांच नियमों के अतिरिक्त "शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः" में जो नियम हैं, वे भी इस साधना के लिए साधक माने गए हैं।

संयम और अहिंसा भारत की दो बहुमूल्य निधियां हैं जो बौद्ध धर्म में भी मुख्य रूप में मानी गई है। महात्मा गान्धी के शिष्य आचार्य विनोबाभावे ने इन्हीं विचारों का प्रचार सर्वोदय के नाम से किया है। इन सब धर्मों के सर्वमान्य मौलिक आदर्शों का समन्वय आचार्य श्रीतुलसी के अणुव्रत आन्दोलन में सहज ही मिल जाने के कारण किसी भी धर्म के अनुयायी को इसमें अपने धर्म का ही रूप दिखाई देता है। यही इसकी सर्वप्रियता का कारण हो सकता है।

अणुव्रत-आन्दोलन हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। वह हमें बार-बार अन्य पर नहीं, अपने पर ही दृष्टि रखने की चेतावनी देता है। अपनी वासनाओं को घटाओ, जीवन को नियमबद्ध बनाओ, दूसरों के कल्याण की कामना करो, अपने अधिकारों को चाहते हो तो अपने कर्तव्यों पर भी ध्यान दो। तुम्हारा यह कर्तव्य है कि यदि तुम सुख चाहते हो तो दूसरों के सुख में बाधक मत बनो आदि बातों में अणुव्रत-आन्दोलन के मूल सिद्धान्त आ जाते हैं। इस आन्दोलन में सबका प्रवेश जाति, धर्म, रंग, रूप और वर्ग के भेद-भाव के बिना हो सकता है। मानव-मात्र को इसे अपनाने का अधिकार है।

आचार्य श्री तुलसी इस व्रत-निष्ठा के द्वारा आत्मा की सनातन समस्या को सुलझाना चाहते हैं। उसके दो साधन हैं—त्याग और अपरिग्रह। त्याग का प्रयोजन है—स्व-नियन्त्रण की क्षमता मानव-मात्र में बढ़े और अपरिग्रह का प्रयोजन है—बुराई या उन्माद को बढ़ाने वाले साधनों से बचा जाये, उन्हें छोड़ा जाये।

अणुव्रत-आन्दोलन यह मानता है कि अतिरिक्त संग्रह पर तुम्हारा अधिकार नहीं है। अधिकार चेष्टा से जो भी तुमने लिया है; उसको दूसरे के हित का ध्यान रखते हुए त्याग दो। शोषण जब मिट जायेगा तो श्रम का सच्चा रूप हमारे सामने आयेगा। शोषण से पवित्रता मिट जाती है। अन्याय के चीत्कार के कारण आत्म-सन्तोष और शान्ति कभी नहीं मिल पाती। शान्ति बिना चरित्र के विकास का मिलना असम्भव है। इसीलिए अणुव्रत-आन्दोलन चरित्र को मुख्य मानकर संयम पर ही अधिक बल देता है।

इस व्रत का उद्देश्य आत्म-शुद्धि की ही भावना है। ऐहिक लाभ या व्यवस्था के लिए इन व्रतों को मानकर नहीं चलना चाहिए। अणुव्रत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह किसी को संन्यास या फकीरी लेने के लिए नहीं कहता है। उसका उद्देश्य है, जो जहां है, वह वहीं अपने को पुनीत बनाये। एक अणु का कल्याण उनका कल्याण और जन का कल्याण, सामूहिक रूप में समाज का कल्याण और सामाजिक कल्याण देश की समृद्धि का चिन्ह है। जितना जीवन विशुद्ध होगा, उतना ही अधिक आप ऊर्ध्वगामी बनेंगे। अणुव्रत

का उद्देश्य है, जीवन पवित्र बने, दैनिक व्यवहार में सच्चाई और प्रामाणिकता आये ।

अणुव्रत के नियम हर व्यक्ति को उसकी परिस्थितियों के अनुसार ही नैतिकता का उपदेश देते हैं । यदि डाक्टर के लिए वह यह बताते हैं कि पैसे के लोभ से मरीजों को दुविधा में मत डालो तो व्यापारी को भी यह बताने में पीछे नहीं हैं कि न कम तोलो, न अधिक तोल कर दूसरों से लो । एक ओर चोर को चोरी करने से रोकते हैं तो दूसरी ओर शासक को घूस लेने से भी ।

यदि यह आन्दोलन सफल हुआ तो इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं कि उससे राष्ट्र की उन्नति में भारी सहयोग मिलेगा ।

●

३१

भारतीय संस्कृति और अणुव्रत

—श्री रामकृष्ण भारती एम. ए. बी. टी

आज विश्व में अशान्ति तथा असन्तोष सर्वत्र व्याप्त है। मानव-समाज गत दो महायुद्धों की विभीषिकाओं से इतना त्रस्त है कि वह तृतीय महायुद्ध की आशंका से ही भयभीत प्रतीत होता है, क्योंकि वह जानता है कि यदि तीसरा महायुद्ध कहीं हुआ तो मानव-संस्कृति का इतना ध्वंस और नाश होगा कि मानवता को कहीं और शरण लेनी पड़ेगी। कोरिया के युद्ध में कितनी भीषणताएं हुईं, आज भी यह वर्णन का विषय है।

संसार के बड़े-बड़े राष्ट्र प्रयत्नशील हैं कि तीसरा महायुद्ध टल जाये। विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न शान्ति सम्मेलन हो चुके हैं और शान्ति के नारे भी यत्र-तत्र लगाये जा रहे हैं, किन्तु शान्ति तो बाहर से मिलने वाली नहीं। इसके लिए तो भीतरी प्रयत्न और निरन्तर साधना की आवश्यकता है। आज का जन-जीवन इतना कृत्रिम, दम्भपूर्ण और अनैतिक हो चुका है कि हमारे प्रत्येक कार्य में स्वार्थ-भावना व्याप्त है।

भारतीय संस्कृति भौतिकतावादी न होकर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से व्याप्त है। हमारे धर्म-शास्त्रों में मानव कर्तव्यों में से एक कर्तव्य यह भी है 'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।' अर्थात् मनुष्य को ऐसा कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए, जो उसे स्वयं अच्छा नहीं लगता।

भारतीय संस्कृति के अनुसार मित्रता ही मनुष्य का धर्म है। शास्त्रों में कहा है—'दृते दृण्हमा मित्रस्य मा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षामहे' अर्थात् संसार के सब प्राणी एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें। मैं तथा हम सब मित्र की दृष्टि से सबको देखें।

मित्रता की भावना के लिए विश्वास की भावना आवश्यक है। जब तक मनुष्य का व्यवहार अन्य लोगों के साथ विश्वासपूर्ण नहीं, तब तक मित्रता

नहीं हो सकती। मित्रता के लिए संकोच, कायरता तथा भय की भावना घातक है। इसीलिए उपासक तथा साधक सदा निर्भय होने की कामना करते हुए वर मांगता है—'अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परो यः। अभयं न मभयं रिवानः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।' अर्थात् मुझे मित्र, अमित्र, परिचित अथवा इन सबसे निर्भयता हो। यहां तक कि दिन और रात भी मेरे लिए निर्भयता का वरदान देने वाले हो। यही नहीं, मनुष्य दिशाओं तक से निर्भयता का वरदान मांगते हुए कहता है—'अभयं नः कुर्वन्त्वन्तरिक्षाभयं द्यावा-पृथ्वी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादभयं मुत्तरादधरादभयं नोऽस्तु। अर्थात् हमें अन्तरिक्ष (आकाश) द्यूलोक, पृथ्वी लोक से अभय लोक का वरदान मिले। यहां तक कि सब दिशाएं भी मेरे लिए निर्भयता का सन्देश दें। पीछे, आगे, ऊपर तथा नीचे सब ओर से हमें निर्भय होने का ही वर मिले।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जहां पश्चिम अन्धाधुन्ध भौतिकता की ओर बढ़ रहा है और मानव होते हुए भी अपने कार्यों से दानव बनने का प्रयत्न कर रहा है, वहां पूर्व के शास्त्र हमें मानवमात्र को 'मनुर्भव' के अनुसार मानव बनने का सन्देश देते हैं। आज का सबसे बड़ा दम्भ और अभिशाप यही है कि हमारे सम्मुख आदर्श तो है देवता बनने का, किन्तु वास्तव में हम मानव कहलाने के भी अधिकारी नहीं हैं। हमारे जीवन का आदर्श तो यह था कि हम सादा जीवन तथा उन्नत विचारवान् बनें, किन्तु आज हमने अपनी आवश्यकताओं को इतना बढ़ा लिया है कि हमारा जीवन कृत्रिम तथा दम्भी बन चुका है और हम सभ्यता की दौड़ में किसी अन्य देश के पीछे रहने में अपना अपमान समझते हैं। आज हमारा जीवन मशीन के समान निर्जीव बन चुका है और हम सारा दिन परिश्रम करके अधिक से अधिक अर्थ-संचय करने का प्रयत्न करते हैं।

गांधीजी ने हमारा ध्यान नैतिकता की ओर आकर्षित किया। उनके जीवन के एक-एक कार्य में धार्मिकता, आतम-चिन्तन तथा आध्यात्मिकता की पवित्र भावनाएं दृष्टिगोचर होती हैं। स्वयं मेक्समूलर जैसे पश्चिमी विद्वान् भारतीय सभ्यता को मस्तक झुकाते हुए भारत का यशोगान करते हुए नहीं थकते।

अणुव्रती-संघ के प्रतिष्ठापक आचार्य श्री तुलसी ने संसार की दुर्दशा को अपनी इन आंखों से देखा और उन्होंने फिर से प्राचीन परम्परा की याद हमें दिलाई। भारतीय संस्कृति में यम और नियमों का महत्त्व उल्लेखनीय है। मनुस्मृति के अनुसार—'यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः, यमान्यतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्'[1] अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह सदा यमो का सेवन करे, केवल नियमों का नहीं। जो व्यक्ति केवल नियमों का ही सेवन करता है तथा यमों पर ध्यान नहीं देता, वह संसार में उन्नति को प्राप्त नहीं होता, अपितु अधोगति अर्थात् संसार में गिरा रहता है।

उक्त यम पांच बताए गए हैं और नियम भी पांच ही हैं—

पांच यम इस प्रकार हैं—तत्राहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः[2]।

अर्थात् अहिंसा (वैर त्याग), सत्य (सत्य मानना, सत्य बोलना और सत्य ही करना), अस्तेय अर्थात् मन, वचन, कर्म से चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य अर्थात् उपस्थेन्द्रिय का संयम, अपरिग्रह अर्थात् अत्यन्त अलोलुपता स्वत्वाभिमान रहित होना—इन पांच यमों का सेवन मनुष्य को अवश्य करना चाहिए।

इसी प्रकार नियम भी पांच बताए गए—शौच सन्तोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः[3]।

अर्थात् शौच—स्नानादि से पवित्रता, सन्तोष—सम्यक् प्रसन्न होकर निरुद्यम रहना सन्तोष नहीं, किन्तु पुरुषार्थ जितना हो सके उतना करना, हानि-लाभ में हर्ष या शोक न करना, तप—कष्ट सेवन से भी धर्मयुक्त कर्मों का अनुष्ठान, स्वाध्याय—पढ़ना पढ़ाना, ईश्वर प्राणिधान—ईश्वर को भक्ति विशेष से आत्मा को अर्पित रखना—ये पांच नियम कहलाते हैं।

इस प्रकार शास्त्र की मर्यादा के अनुसार आचार्य श्री तुलसी ने द्वितीय महायुद्ध के परिणाम स्वरूप तथा देश की स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् बढ़ती

---

१. मनु अ-४, २०४।

२. योग साधन पादे सू० ३०।

३. योग साधन पादे सू० ३२।

हुई अनैतिकता, चोरबाजारी तथा रिश्वत को देखकर अपना कर्तव्य समझा कि वे एकबार फिर से मानवता का आह्वान करें और उन्हे अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करें। दो तीन वर्ष पूर्व वे दिल्ली पधारे और उन्होंने राजधानी की जनता को तथा उनके माध्यम से देश तथा विदेश की जनता को उनके कर्तव्य से परिचित कराया। पांच यमों अर्थात् महाव्रतों के आधार पर उन्होंने जैन शास्त्रानुकूल अणुव्रतों के लिए मानवता को पुकारा। महाव्रतों तथा अणुव्रतों को समझाते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि जन-साधारण के लिए महाव्रतों का पूर्णतया पालन करना सम्भव नहीं। इसलिए वे उनके जितने भी अंश का पालन कर सकें, उतना प्रयत्न वे करने में कभी न चूकें। साधना-मार्ग कठिन होता है और उसके लिए निरन्तर कष्ट और तपस्या की आवश्यकता रहती है। सांसारिक साधकों के लिए आचार्य श्री तुलसी ने अणुव्रती-संघ का विधान बनाते हुए चौरासी नियमोपनियमों का उल्लेख किया, जिनको पालन करने में सभी साधक प्रयत्नशील रह सकते हैं।

अणुव्रती-संघ तथा उसकी विचारधारा के सम्बन्ध में देश तथा विदेश में उत्साहजनक प्रतिक्रिया हुई, जिसका वर्णन अणुव्रत साहित्य से प्राप्त किया जा सकता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हम आत्म-निरीक्षण तथा साधना के जीवन के लिए अपने आपको प्रस्तुत करें। जब तक जन-जीवन में जागरण तथा कर्तव्य की भावना उन्नत नहीं होगी, तब तक उद्देश्य में सफलता मिलने की पूर्ण आशा नहीं है। जब तक हमारा नैतिक स्तर ऊंचा नहीं होगा, तब तक समाज का स्तर उन्नत नहीं हो सकता। यह ठीक है कि आज रोटी के प्रश्न ने अन्य सब प्रश्नों को पराभूत कर दिया है और 'सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति' के अनुसार सभी समस्यायें आर्थिक समस्याओं का अंग बनकर रह गई हैं, किन्तु पैसे की होड़ में सबका दृष्टिकोण ही ऐसा कृत्रिम हो गया है कि हमारा पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन भी उसके प्रभाव से अछूता नहीं रह गया है। प्राचीन परम्पराएं तथा अन्ध-विश्वास, सामाजिक कुरीतियां तथा दम्भ बहुत कुछ छिन्न-भिन्न होते जा रहे हैं। मानव प्रगतिशील दृष्टिकोण से वस्तुवादी तथा यथार्थवादी बन रहा है। आदर्शवाद की नींव को खोखला सिद्ध

करने के प्रयत्नों में भौतिकवादी प्रयत्न निरन्तर जुटे हुए हैं, ऐसी स्थिति में संसार फिर से भारतवर्ष की ओर दृष्टि लगाए बैठा है। एशिया जाग रहा है। योरूप के बन्धन से एशिया के छोटे-छोटे देश मुक्त होते जा रहे हैं और इस बात की आशा है कि योरूप का पारस्परिक गुटबन्दी का वातावरण उसे एक ऐसे गर्त में धकेलेगा कि मानव का पुनर्निर्माण होगा। अमरीका के कार-खानों में दिन-प्रतिदिन बनती हुई युद्ध-सामग्री तथा उसका व्यापारिक दृष्टि-कोण उसे युद्ध के सपने देखने को विवश करते रहते हैं। जब तक हमारे मनों में आशंका, सन्देह तथा अविश्वास का वातावरण बना रहेगा, तब तक हम एक राष्ट्रसंघ नहीं, अनेकों ऐसे संघ बनालें तो भी मानवता का कुछ कल्याण होने वाला नहीं। प्रत्येक विवाद ग्रस्त प्रश्न का निबटारा जब तक दलबन्दी के आधार पर होगा, तब तक हम अन्धेरे में ही ठोकरें खाते रहेंगे। इसलिए हमें अन्धकार से प्रकाश की ओर चलने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए।

'तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय' अर्थात् अन्धकार से प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले चलो। हमें निराशवादिता को छोड़कर आशा का संबल लेकर चलना है। मार्ग की उलझनें तथा संकट हमें हमारे नव निर्माण के लिए प्रयत्नशील करें यही हमारी हार्दिक भावना और इच्छा होनी चाहिए।

●

३२

अणुव्रत : एक दृष्टि

—प्रो० श्रीमती त्रिवेणी सिंह एम० ए०

आज का युग भौतिकता का युग है। चारों ओर इसी का प्रभाव दीख पड़ता है। जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया है। प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख साधनों की उपलब्धि को ही अपने जीवन का परमोद्देश्य समझता है। हमें तो सिर्फ बाह्य वातावरण में ही उलझ कर मरना आ रहा है, न हम अपने अगल देख सकते न बगल, फिर भीतर की तो बात ही दूर है। मनुष्य अपने आपको स्वयं नहीं पहचान पा रहा है चूंकि उसके पास आत्मदर्शन के हेतु समय नहीं। सभी आंख मूंदे एक ही ओर बढ़े चले जा रहे हैं, परिणति की ओर भी किसी का ध्यान नहीं जा पाता। हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है और उसकी प्राप्ति के मार्ग कौन हैं ? हम इससे सर्वथा अनभिज्ञ हैं। राष्ट्रीय सामाजिक तथा वैयक्तिक जीवन से आध्यात्मिकता का सर्वथा लोप हो गया है। एक ऐसा युग आ गया है जब कि सर्वसाधारण तो इसे अनावश्यक और अनर्गल समझने लगा है। फिर भी भारत माता की भूमि में कुछ ऐसी शक्ति है कि सर्वदा यहां अध्यात्म, दर्शन एवं चिन्तन के नेताओं का प्रादुर्भाव होता रहता है। जैन धर्म का भी भारत के राष्ट्रीय तथा धार्मिक इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है और यदि आज ही मानवता को यह कल्याण के पथ पर ले जाना चाहता है तो कुछ अस्वाभाविक नहीं, वरन् श्लाध्य है।

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय के नायक आचार्य श्रीतुलसीने अणुव्रती संघ की स्थापना कर जिस व्यापक दृष्टिकोण को अपनाया है, उसकी प्रशंसा करने का लोभ संवरण मैं नहीं कर सकती। साम्प्रदायिकता की संकीर्ण परिधि से मुक्त यह नैतिक आन्दोलन एक क्रान्ति है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि आज का संतप्त मानव-समाज इसका अभिनन्दन करेगा, यदि इसका सुचारु रूप से प्रचार किया गया। अणुव्रतके नियमों को देखने से यह स्पष्ट [illegible] होता है कि यह रुढ़िविहीन, नैतिक एवं सामाजिक आन्दोलन है। संघ के नियमों से

यह आभास मिलता है कि आचार्य महोदय को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र का व्यावहारिक ज्ञान है तथा उसी पर आधारित ये नियम हैं जो सुगमता से जीवन में प्रवेश पा सकते हैं।

महिलाओं के लिए जो विशेष नियम हैं वे भी सर्वथा प्रशंसनीय हैं तथा उनके जीवन को उच्चादर्शों की ओर ले जाने वाले हैं। पुरुष और नारी, जीवन रूपी रथ के दो पहिए हैं और दोनों का सुदृढ़ होना आवश्यक है। करुणा एवं वात्सल्य की मूर्ति नारी में चरित्र गठन की सर्वथा अपेक्षा रहती है और इन नियमों का यदि अक्षरशः पालन किया जाये तो गार्हस्थ्य जीवन पूर्णतया सुखी हो सकता है अथवा पृथ्वी पर स्वर्गके निर्माण की कल्पना साकार रूप धारण कर सकती है। इन नियमों के पालन से नारी स्वातन्त्र्य को भी कोई आघात नहीं पहुंचता बल्कि उसे तो एक शक्ति मिलती है।

बापू के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त का बड़ा ही सुन्दर समावेश अणुव्रत के नियमों में हो पाया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से आत्मदर्शन का बड़ा ही महत्त्व है तथा निर्वाण का यही प्रथम सोपान है। इस पहलू पर भी पूरा जोर दिया गया है तथा मेरा विश्वास है कि इसके प्रसार से सामाजिक उत्थान एवं राष्ट्रीय निर्माण को बहुत बड़ी शक्ति मिलेगी और हम अभीष्ट को प्राप्त कर लेंगे।

●